ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के आधार पर जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य का अनुशीलन

Dhwani Evam Sangeet Tatwa Ke Adhar Par Jayashankar Prasad Aur Suryakant Thripadhi Nirala Ke Kavya Ka Anusheelan

Jayaprabha C S
Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology,
Kochi 682022

Ph D Thesis submitted to Cochin University of Science and Technology for the award of the Degree of Doctor of Philosophy.

December 2002

Dhwani evam sangeet tatwa ke adhar par Jayasankar Prasad aur Suryakanth Thripadhi Nirala ke kavya ka anusheelan
Ph D thesis (Hindi) in the field of literary criticism.

Author
Jayaprabha C S
Research Fellow, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi – 682 022

Research Advisor
Dr N G Devaki
Professor, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi - 682 022

Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi – 682 022
www.cusat.ac.in

December 2002

"वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्।
श्रुतं मे मा प्रहासीः
सत्यं वदिष्यामि।।"

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled **"DHWANI EVAM SANGEET TATWA KE ADHAR PAR JAYASHANKAR PRASAD AUR SURYAKANT THRIPADHI NIRALA KE KAVYA KA ANUSHEELAN"** is an authentic record of the research carried out by me under the supervision of **Prof. N.G. DEVAKI**. Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and that no part of it has been previously formed the basis for the award of any degree, diploma. associateship, fellowship or similar title or recognition in any other university.

Jayaprabha

(JAYAPRABHA C.S.)

Department of Hindi,
Cochin University of Science and Technology,
Kochi - 682 022.

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"DHAWANI EVAM SANGEET TATWA KE ADHAR PAR JAYASHANKAR PRASAD AUR SURYAKANT THRIPADHI NIRALA KE KAVYA KA ANUSHEELAN"** is a bonafide record of work carried out by **JAYAPRABHA C.S.** under my supervision for the award of the Degree of Doctor of Philosophy and that no part of this thesis hitherto has been submitted for a degree in any other university.

Devaki
23-12-2002

(Dr. N.G. DEVAKI)
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 022

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के आधार पर जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य का अनुशीलन" आपके समक्ष है। शोद क्रार्य के पूर्ण होने तक शोधछात्रा उन सभी व्यक्तियों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने केलिए प्रेरणा दी। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की रूपरेखा के अनुसार यथासाध्य, उपलब्ध सामग्रियों का संकलन कर इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत किया है।

सर्वप्रथम आदरणीया गुरुवर प्रो. डॉ. एन.जी. देवकी (हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ। उन्हीं की प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देशन से ही यह कार्य संपन्न हुआ है। समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान करते हुए प्रोत्साहन देने वाले ऐसे व्यक्तित्व के आगे नतमस्तक हूँ।

इनके पति डॉ. वी.पी.एन नंबूतिरी (प्रोफेसर, 'इन्टरनाशनल स्कूल ऑफ फोटोनिक्स', कोचिन विश्वविद्यालय) के प्रति भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने बहुमूल्य निर्देशन से मुझे लाभान्वित किए।

विभागाध्यक्ष, विभाग के अन्य गुरुजनों, पुस्तकालय के अधिकारियों एवं अन्य शोध छात्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनसे मुझे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहायता मिली है।

उन ज्ञात-अज्ञात लेखकों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनकी रचनाओं से शोध की नई दिशाओं का संकेत मिला है।

मेरी माता और भाइयों के प्रति किन शब्दों में मैं आभार प्रकट करूँ। उनके दिए हुए स्नेह सहयोग एवं आश्वासन से तो मुझे शोधकार्य संपन्न करने की शक्ति मिली है।

जयप्रभा.

जयप्रभा. सी.एस.

हिन्दी विभाग,
कोचिन युनिवर्सिटि आफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी
कोच्चि- २ २

भूमिका

साहित्य और कला का उद्देश्य, मानवमन में सौंदर्यानुभूति की सृष्टि है। साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक खोज ही मानवमन के सृजनात्मक व्यापारों की अभिव्यक्ति का मूल है। मानव की सृजनशीलता की विभिन्न शैलियों में जो पारस्परिक अन्तःसंबन्ध है वह उनकी रचनाओं में उत्प्रेरित प्रतिरूपों में प्रतिध्वनित होते हैं जो इनका अनुसरण करते हैं। ऐसे ही प्रतिरूप संगीत, शिल्प, कविता और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का सृजन करते हैं, और इनका आत्यन्तिक लक्ष्य है मानव मन में सौंदर्यानुभूति जागृत करना। और यही जीवन रूपी सत्यान्वेषण केलिए प्रेरणादायक है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि कविता में शब्दार्थ और संगीत के योग से ही मानव के मन और मस्तिष्क में सौंदर्यानुभूति का विन्यासक्रम संभव हो पाता है। और इस विन्यासक्रम में आनेवाली किंचित् भिन्नता भी पाठकों में विभिन्न अनुभूतियों को जगाने केलिए पर्याप्त है। इस प्रकार उत्तमकाव्य या ध्वनिकाव्य श्रोताओं के मन में वैविध्यपूर्ण एवं संकीर्ण प्रतिमानों की सृष्टि करने में सक्षम है। यही कारण है कि इसप्रकार की रचनाएँ कितनी भी बार पढ़ें, कभी उदासीनता महसूस नहीं होती।

प्रकृति में दर्शनीय सभी वस्तुएँ संकीर्णता के उदाहरण हैं। बाहर से सरल दीखने पर भी विभिन्न घटकों के परस्पर सम्मिलन से रूप लेनेवाले प्रतिमान ही हमारे अन्तर सौंदर्य के रमणीय भाव को जन्म देते हैं। उदाहरण स्वरूप, संगीत के आधारभूत घटक हैं सप्तस्वर। निश्चित काल में ताल-लय-विन्यास के साथ जब ये स्वर क्रमयुक्त होकर आते हैं तब संगीत का जन्म होता है। भावों की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को भी संगीत के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं और इसके शब्द वाचक न होकर व्यंजक होते हैं। संगीत की ध्वनियों में भी रसादिविषयक व्यंजकता है।

कविताओं द्वारा व्यंजित विभिन्न सूक्ष्म भाव ही कविता-ध्वनि का परम लक्ष्य है, और पाठकों के मन में वैविध्यपूर्ण घटकों से सममित रूप में रूपायित प्रतिमानों के 'सौंदर्य' नामक मानसिक प्रतिभास का कारण भी। 'सौंदर्यशास्त्र' नामक एक अलग शाखा के रूपायित होने पर भी मानवमन के इस उदात्त संकल्प को पूर्ण रूप से परिभाषित करना संभव नहीं हो पाया है। फिर भी पिछले एक दशक से लेकर साहित्यादि ललितकलाओं और शास्त्रविषयों के समन्वय से, इनसे संबन्धित काफ़ी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिली हैं। वस्तुतः कविता के लिखित अंश को सुनाते समय, सुनानेवाले के मन में जिन प्रतिरूपों का पुनःसृजन होता है उससे सहयोगी बिंब विधान रूपायित होता है तथा परिणामतः और अधिक सृजनात्मक उपजातों का जन्म होता है। इसप्रकार उत्प्रेरित मानवीय सृजनात्मकता का विश्लेषण ध्वनि जैसी अमूर्त संकल्पनाओं तक पहुँचाते हैं। ये साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में भारतीयों की अमूल्य देन है। कविता के आस्वादन केलिए विभिन्न स्तरों को उद्घाटित करने में ध्वनियों का स्थान विशेष उल्लेखनीय है।

संक्षेप में उत्तम साहित्यि से संबद्ध किसी भी अध्ययन आस्वादकों केलिए अप्रकाशित तत्त्वों के मूल तक पहुँचने में सहायक बनता है। ध्वनि, संगीत तथा अर्थविपुलताओं से उद्भूत विभिन्न अनुभुतियों को प्रदान करने की विशेष क्षमता श्रेष्ठ कविताओं में होती है। इसीप्रकार ध्वनि और संगीत रूपी मापदण्डों की सहायता से, हिन्दी के दो कीर्तिमान कवियों की कृतियों का, उनकी गहराइयों में जाकर उसमें छिपी हुई अमूल्य सत्ता को प्रकाश में लाना ही इस अध्ययन का आत्यन्तिक लक्ष्य है।

जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्तत्रिपाठी निराला दो ऐसे महान कवि हैं जिन्होंने ध्वनि एवं संगीत की दृष्टि से छायावादी काव्य को संपन्न कराने का सशक्त प्रयास किए। इन दोनों के संपूर्ण काव्य में ध्वनि और संगीत का सर्वाधिक निर्वाह हुआ है। ये तत्त्व उनके जीवन और कवि-कर्म के विकास के साथ-साथ अपना रूप बदलते गए। उनके काव्य-विकास की दिशाओं में ध्वनि और संगीत का सफल निर्वाह भी हुआ है।

एम.फिल. में शोध छात्रा ने "निराला के छायावादी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व" विषय पर अध्ययन केन्द्रित किया था। उस अध्ययन से सिद्ध हो गया कि हिन्दी साहित्य में ध्वनि और संगीत की दृष्टि से छायावादी युग का अपना एक अलग एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। साथ ही यह भी विदित हो गया कि ध्वनि और संगीत तत्त्व के परिप्रेक्ष्य में समग्र छायावादीयुगीन कविताओं के अध्ययन की संभावना है। यद्यपि चारों छायावादी कवियों की कविताओं में ये तत्त्व मिलते हैं, तथापि व्यापक एवं गहन अध्ययन केलिए प्रस्तुत विषय को प्रसाद एवं निराला तक सीमित रखना उचित समझा, और इनकी कविताओं में ध्वनि एवं संगीत के स्थान को प्रतिष्ठित करने का निश्चय किया। प्रसाद और निराला की रचनाओं का अध्ययन-विश्लेषण विभिन्न दृष्टिकोण से हुए हैं, और उनमें ध्वनि तथा संगीत से संबद्ध कुछ संकेत मात्र मिलते है; किन्तु इन्हीं तत्त्वों के आधार पर उनकी रचनाओं के मूल्यांकन का प्रयास अब तक नहीं हुआ है। अतः पीएच.डी. के शोध-प्रबन्ध का विषय "ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के आधार पर जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्तत्रिपाठी निराला के काव्य का अनुशीलन" रखा।

प्रस्तुत शोधप्रवन्ध, कुल छह अध्यायों में विभक्त हैं।

पहला अध्याय है "काव्य, ध्वनि और संगीत।" इसमें काव्य ध्वनि और संगीत का पृथक्-पृथक् अध्ययन करते हुए उनके पारस्परिक संबन्ध को अत्यन्त गहन, सूक्ष्म एवं व्यापक रूप में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न युगों के हिन्दी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व को कालक्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए छायावादी काव्य में इन तत्त्वों के स्थान को प्रतिष्ठित किया गया है।

दूसरे अध्याय का शीर्षक है "प्रसाद के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण।" इसमें व्रजभाषा से खड़ीबोली में काव्यभाषा के परिवर्तन का विचार करते हुए प्रसाद के काव्य की ध्वनियोजना का विश्लेषण संगीतात्मक ध्वनियोजना, अर्थगत नादसौंदर्य, अर्थध्वननकारी योजना, अनुप्रास योजना, ध्वन्यर्थव्यंजना आदि की दृष्टि से किया गया है।

"प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण" शीर्षक तीसरे अध्याय में संगीत के युगानुरूप परिवर्तन पर विचार करते हुए उनके संगीतज्ञान को परखा है। काव्य में संगीत को बनाए रखने केलिए जिन तत्त्वों का योग अनिवार्य है उनके आधार पर प्रसाद के काव्य का अध्ययन सोदाहरण किया गया है।

चौथा अध्याय है "निराला के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण।" इस में निराला के ध्वनि संबन्धी विचारों पर प्रकाश डालते हुए उनके काव्य की ध्वनियोजना को समझना और समझाना ही मुख्य लक्ष्य है। उनकी ध्वनियोजना कौशल को सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए उसकी विशेषताओं को सफल अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास भी किया गया है।

पाँचवें अध्याय का शीर्षक है "निराला के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण।" इसमें निराला को संगीत संबन्धी मान्यताओं पर विचार करते हुए उनके काव्य में बाह्य और आन्तरिक संगीत को प्रमाण साहित प्रतिष्ठित किया गया है। साथ ही संगीत के निर्वाहक तत्त्वों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। निराला ने संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का प्रयास किया था।

छठे अध्याय में प्रसाद और निराला के काव्य का मूल्यांकन ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के आधार पर किया गया है। इसमें संगीत को प्रश्रय देनेवाली ध्वनियों पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए, संगीत की योजना में ध्वनियों का क्या स्थान है? इस प्रश्न केलिए उत्तर ढूँढने का प्रयत्न किया गया है।

उपसंहार में संपूर्ण शोधकार्य की उपलब्धियों एवं स्थापनाओं का विश्लेषण करते हुए प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व को स्थापित किया गया है।

परिशिष्ट में संगीत की परिभाषिक शब्दावलियों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है जो संगीत में रुचि रखनेवालों केलिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

अन्त में शोध की वैज्ञानिक प्रणाली पंचसूत्री क्रमानुसार सहायकग्रंथ-सूची प्रस्तुत की गई है।

हिन्दीतर क्षेत्र की हिन्दी शोध छात्रा होने के नाते प्रस्तुत शोधकार्य में कहीं त्रुटियाँ या कमियाँ आ गई हो तो शोध छात्रा उसकेलिए क्षमा प्रार्थी हूँ। ध्वनि एवं संगीत तथा प्रसाद एवं निराला के काव्य में रुचि रखनेवाले अध्येताओं एवं अनुसन्धाताओं को प्रस्तुत अध्ययन से किंचित् प्रयोजन मिलेगा तो शोध छात्रा अपने को धन्य मानूँगी।

विनम्रा,

जयप्रभा

जयप्रभा. सी.एस.

हिन्दी विभाग,
कोच्चिन यूनिवर्सिटी ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी
कोच्चि-२२

शोध प्रपत्र (संप्रेषित)

विषय	पत्रिका
ध्वनि और संगीत -	'साहित्यभारती' (त्रैमासिक) उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
जी. शंकर कुरुप् : अनुवादक के रूप में - अनूदित कृति 'मेघच्छाया' के विशेष सन्दर्भ में।	'अनुवाद' (त्रैमासिक) भारतीय अनुवाद परिषद्, नई दिल्ली।

विषयानुक्रमणिका

विषय :- ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के आधार पर जयशंकर प्रसाद एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य का अनुशीलन **पृष्ठसंख्या**

पहला अध्याय :

काव्य, ध्वनि और संगीत **1 - 39**

1.1.1. 'काव्य' से तात्पर्य

1.1.2 काव्य में शब्दशक्ति

1.2 ध्वनि : परिचय

भाषावैज्ञानिक रूप

काव्यशास्त्रीय रूप

1.2.1 भाषावैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय ध्वनियों में अन्तर

1.3 संगीत : सामान्य परिचय

1.3.1 संगीत की उत्पत्ति एवं महिमा

1.3.2 शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

1.3.3 हिन्दुस्तानी संगीत और कर्णाटिक संगीत का संबन्ध

1.3.3.1 समानताएँ

1.3.3.2 विषमताएँ

1.4 काव्य और ध्वनि का संबन्ध

1.5 काव्य और संगीत का संबन्ध

1.5.1 बाह्य संगीत और आन्तरिक संगीत

1.6 ध्वनि और संगीत का संबन्ध

1.7 काव्य, ध्वनि और संगीत

1.8 विभिन्न युगों के हिन्दी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व

1.9 छायावादी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व का वैशिष्ट्य

दूसरा अध्याय :

प्रसाद के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण **40 - 69**

1.1 प्रसाद के काव्य में शब्दशक्ति का महत्त्व

1.2 प्रसाद के काव्य में ध्वनियोजना

1.2.1 संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग

1.2.2 प्रसाद के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य

1.2.3 प्रसाद-काव्य में अर्थध्वननकारी योजना

1.2.4 प्रसाद - काव्य में अनुप्रास विधान

1.2.5 प्रसाद के काव्य में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग

तीसरा अध्याय :

प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण **70 - 99**

1.1 प्रसाद के काव्य में संगीत का स्थान

1.2 प्रसाद की संगीत संबन्धी मान्यताएँ

1.3 प्रसाद-काव्य में संगीत-तत्त्वों का स्वरूप

1.4 प्रसाद के काव्य में छन्दविधान और तुकांतता

1.5 प्रसाद-काव्य में लय और ताल

1.6 प्रसाद के काव्य में वाद्य एवं नृत्य का स्थान

चौथा अध्याय :

निराला के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण **100 - 131**

1.1 निराला के काव्य में शब्दशक्ति का महत्त्व

1.2 निराला के काव्य में ध्वनियोजना

1.2.1 'श-ण-व-ल' एवं 'स-म-ब-ल' ध्वनियों का प्रयोग

1.2.2 संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग

1.2.3 निराला के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य

1.2.4 निराला-काव्य में अर्थध्वननकारी योजना

1.2.5 निराला के काव्य में शब्दालंकार योजना

1.2.6 निराला के काव्य में अनुप्रास विधान

1.2.7 निराला-काव्य में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग

पाँचवाँ अध्याय :

निराला के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण **132 - 164**

1.1 निराला की संगीत संबन्धी मान्यताएँ

1.2 निराला-काव्य में संगीत का स्थान

1.3 निराला और उनकी 'गीतिका'

1.4 निराला-काव्य में संगीत-तत्त्वों का प्रयोग

1.5 निराला-काव्य में छन्दविधान और तुकांतता

1.6 निराला के काव्य में लय और ताल

1.7 निराला-काव्य में वाद्य संगीत

1.8 निराला का नृत्य-संबन्धी ज्ञान

छठा अध्याय :

प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व का मूल्यांकन **165 - 193**

1.1 काव्यभाषा और संगीत

1.2 नादसौंदर्य और संगीत

1.2.1 शब्द-युग्मों के प्रयोग और संगीत

1.2.2 शब्दालंकार योजना और संगीत

1.2.3 अनुरणनात्मक ध्वनियों के द्वारा संगीत-योजना

1.2.4 छन्द-योजना और संगीत

उपसंहार **194 - 200**

परिशिष्ट

संगीत की पारिभाषिक शब्दावली

सहायक ग्रंथ-सूची

पहला अध्याय

काव्य, ध्वनि और संगीत

सारांश

प्रस्तुत अध्याय में काव्य, ध्वनि और संगीत संबन्धी पृथक्-पृथक् अध्ययन करते हुए, काव्य और ध्वनि, काव्य और संगीत तथा ध्वनि और संगीत के अन्तःसंबन्ध को सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है। काव्य और संगीत के अध्ययन के अन्तर्गत बाह्य संगीन (विशुद्ध संगीत) और आन्तरिक संगीत (काव्यगत संगीत) के अन्तर को भी रेखांकित किया गया है। इसके पश्चात् काव्य, ध्वनि और संगीत के पारस्परिक संबन्ध पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त विभिन्न युगों के हिन्दी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के स्वरूप को कालक्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए अन्त में छायावादी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व के विशिष्ट स्थान को निर्धारित किया गया है, जो आगे के अध्ययन की ठोस पृष्ठभूमि है।

पहला अध्याय

काव्य, ध्वनि और संगीत

संपूर्ण मानव जाति के उदय के साथ काव्य का उद्‌भव भी जुड़ा हुआ है। यह तो सर्वविदित है कि भारतीय साहित्य की परंपरा वैदिक युग से प्रारंभ हुई है तथा वेदों को ही ज्ञान का आदिस्रोत माना जाता है। यही नहीं साहित्य का प्रारंभिक रूप तो काव्य है ही। अर्थात् वैदिक साहित्य का स्वरूप ही पद्यबद्ध है। हमारा समूचा वैदिक साहित्य संगीतमय है। कोई भी वैदिक ऋचा ऐसी नहीं है जो गाकर न पढ़ी जा सके, जिसमें संगीत न हो। सामवेद तो पूरा संगीत ही है, और इसी से संगीत की उत्पत्ति मानी जाती है, इस दृष्टि से काव्य और संगीत दोनों का संबन्ध अनादिकाल से है। संगीत मानव-हृदय की भाषा है और इसका आधार चित्ताकर्षक नाद है। शब्द, अर्थ, ध्वनि और भाव की अवधारणा संगीत और काव्य में होती है। शब्द और अर्थ द्वारा क्रमशः ध्वनि और भाव की सृष्टि होती है। शब्द और अर्थ का वाहक काव्य है तथा ध्वनि और भाव का वाहक संगीत। मानवजीवन ही काव्य है। जीवन रूपी काव्य को सरस एवं सुन्दर बनाने केलिए संगीत का योगदान महत्त्वपूर्ण एवं अद्‌भुत है। काव्य और संगीत का ध्वनि के बिना कोई अस्तित्व है ही नहीं। अतः काव्य, ध्वनि और संगीत तीनों का मानवजीवन से अटूट संबन्ध है।

1.1.1 'काव्य' से तात्पर्यः-

मानवीय भावनाओं को मूर्त अभिव्यक्ति देनेवाला एक सशक्त माध्यम काव्य ही है। आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य[1] को काव्य कहा है तो पण्डित जगन्नाथ के अनुसार

---

1. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" - आचार्य विश्वनाथ-'साहित्यदर्पण' (,13)

रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द[1] काव्य है। दोनों परिभाषाओं में शब्द और अर्थ को ही प्रधानता दी गई है। आचार्य शुक्लजी ने भी काव्य में शब्द विधान की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है–

"हृदय की मुक्ति की साधना केलिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।"[2]

इस परिभाषा से स्पष्ट हो ही जाता है कि, शुक्लजी ने भी कविता में उच्चरित शब्द को काफ़ी महत्ता दी है।

काव्य की परिभाषा और स्वरूप को उद्घाटित करने में पाश्चात्य विद्वानों का भी अपना योगदान है।

मिल्टन के अनुसार कविता सहज संवेदनात्मक एवं रागात्मक होनी चाहिए।[3] इसमें सहज ही संगीतात्मकता आ गई है। कारलायल के अनुसार कविता संगीतमय विचार है।[4] इन्होंने कविता में संगीतमयता को प्रमुख तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

1.1.2 काव्य में शब्दशक्ति:-

'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये' के द्वारा कालिदास ने और 'गिरा अर्थ जल विचि सम' के द्वारा तुलसीदास ने भी शब्द और अर्थ की महत्ता को द्योतित किया है। दोनों अन्योन्याश्रित है। शब्द कभी सामान्य अर्थ का, कभी विशिष्ट अर्थ का, कभी विशिष्ट से भी

1. *"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" - पण्डित जगन्नाथ-'रसगंगाधर' (,19)*
2. *आचार्य रामचन्द्रशुक्ल 'चिन्तामणि' - (भाग - 1) पृ. 141*
3. *"Poetry should be simple sensuous and passionate" - Milton - Essay on Education - P. 70*
4. *"Poetry we will call Musical thought" - Carlyle-'Hero' and Hero worship' - P. 58*

विशष्टतम अर्थ का बोध कराते है। यह अर्थबोध भाषा में शब्द प्रयोग पर निर्भर है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना जैसे शब्दशक्तियों का विभाजन तो आचार्यों द्वारा पहले से निर्धारित है ही। इसमें से व्यंजनाशक्ति से ध्वनि और संगीत को संबद्ध कराने का प्रयास है। क्योंकि व्यंजना से युक्त काव्य को ही उत्तम काव्य कहा गया है और इसी को 'ध्वनिकाव्य' भी कहते हैं। व्यंजना वह शक्ति है जो बाह्य सौंदर्य के रेशमी पर्दे को हटाकर काव्य के वास्तविक लावण्य को व्यक्त करती है। दूसरे शब्दों में काव्य में निहित निगूढ़तम अर्थ को व्यक्त करनेवाला शब्दव्यापार है व्यंजनाशक्ति। शब्दशक्तियों के भेदोपभेद संबन्धी विस्तृत विश्लेषण साहित्यशास्त्रियों ने किए हैं। उनकी दृष्टि में शब्दशक्तियाँ ही संपूर्ण अर्थद्योतन स्वाभाविक ढंग से करा सकती है। काव्य संबन्धी इन विचारों से व्यक्त हो ही जाता है कि उसमें संगीतात्मकता का सान्निवेश है; साथ ही साथ ध्वनि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

1.2 ध्वनि परिचय

ध्वनि के सामान्यतया दो रूप व्यवहृत हैं-

(1) भाषावैज्ञानिक रूप

(2) काव्यशास्त्रीय रूप।

काव्य भाषाधिष्ठित है। भाषा संबन्धी विस्तृत अध्ययन भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। इस सन्दर्भ में ध्वनि का सर्वथा विशिष्ट अर्थ एवं महत्त्व है। वैसे तो किसी भी वस्तु से किसी भी तरह की कुछ ऐसा हो जो सुना जा सके, उसे सामान्यतया ध्वनि कहते हैं। इस दृष्टि से ध्वनि का क्षेत्र काफ़ी व्यापक एवं विस्तृत है। मगर अर्थ की दृष्टि से सामान्य ध्वनि और भाषाध्वनि में भेद होता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार "भाषाध्वनि भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो।"[1]

---

1. 'भाषाविज्ञान' पृ. 305

इस परिभाषा से स्पष्ट हो ही जाता है कि ध्वनि, भाषा की सबसे छोटी इकाई है और उसका भाषा में अपनी अलग पहचान है; 'भाषाध्वनि' निश्चित प्रयत्न द्वारा उच्चारण अवयवों से उत्पन्न की गई एक निश्चित श्रुतिगम्य ध्वनि होती है। श्रुतिगम्यता से संगीत का भी संबन्ध है।

काव्यसिद्धान्त के रूप में 'ध्वनि' शब्द का प्रथम प्रयोग 'ध्वन्यालोक' ग्रंथ में मिलते हैं। उसमें ध्वनि की परिभाषा इसप्रकार दी गई है - 'जहाँ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गौण करके प्रतियमान को अभिव्यक्त करते है, उस काव्यविशेष को विद्वान लोगों ने ध्वनि कहा है–

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।"[1]

इस परिभाषा का आशय यही है कि विद्वान लोग उस काव्य को ध्वनि कहते है, जिसमें कथित शब्द और अर्थ अपने को अप्रधान बनाकर व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। यही ध्वनि आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य की आत्मा है।

ध्वनि से संबद्ध सिद्धान्त वैयाकरणों के 'स्फोट सिद्धान्त' पर आधारित है। 'ध्वन्यालोक' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि ध्वनि सिद्धान्त तथा उसका नामकरण वैयाकरणों के स्फोटवाद के सादृश्य पर कर लिया गया था। वैयाकरण सुनाई देनेवाले वर्णों को ध्वनि कहते है। प्राचीन वैयाकरणों का कहना था कि श्रोत्रेन्द्रिय तक पहुँचनेवाली ध्वनियों का शीघ्र ही तिरोभाव हो जाता है। इस कारण से विभिन्न ध्वनियों के समूहों से बने हुए शब्दों से, या वाक्यों से अर्थबोध नहीं हो सकते। शब्द का स्थूल उच्चरित रूप उच्चारण के भेद के अनुसार बदलता रहता है, इसलिए वह अनित्य है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शब्द का सूक्ष्म

---

1. 'ध्वन्यालोक' - प्रथम उद्योत, श्लोक संख्या - 13

प्रतिरूप भी होता है जो मानवीय मन में विद्यमान रहता है जो नित्य है और अविभाज्य है। इसी सूक्ष्म एवं नित्य ध्वनि रूप को 'स्फोट' की संज्ञा दी गई है।

भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीयम्' में कहा है कि 'स्वरतन्त्रियों के खुलने और बन्द होने से जो स्फोट या नाद उत्पन्न होता है, वह शब्दज, शब्द है। इसे ही विद्वानों ने 'ध्वनि' की संज्ञा दी है-

'यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते।
सः स्फोटः शब्दजाः शब्दाध्वयोऽन्यैरुदाह्यताः।'[1]

इससे स्फोट की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक शब्द में प्रत्येक अर्थ निहित है और कभी भी वह स्फुटित हो सकता है। स्फोटसिद्धान्त में यह तथ्य तो स्पष्टतः निहित है ही कि प्रत्येक शब्द तभी तक स्फोट कहलाने का अधिकारी है जब तक वह अपने नियत अर्थ को प्रकट करता रहता है। इसप्रकार 'स्फोट' को अभिव्यक्त करनेवाले वर्णो को ध्वनि कहते हैं।

वैयाकरणों के इसी स्फोट के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने ध्वनिसिद्धान्त को पल्लवित किया है। उनकी मान्यता है कि जिसप्रकार किसी शब्द की पृथक्-पृथक् ध्वनियाँ (वर्ण) अर्थ का बोध कराने में असमर्थ रहती है और उनके स्फोट द्वारा ही अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, उसीप्रकार काव्य में केवल वाच्यार्थ से काव्यगत मूल सौदर्य को नहीं जाना जा सकता है। काव्य का वास्तविक अर्थ वस्तुतः व्यंग्यार्थ (निगूढ़ अर्थ) ही कर सकता है। वैसे 'ध्वनि' शब्द व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंग्य अर्थ, व्यंजना व्यापार तथा व्यंग्यकाव्य के अर्थों में प्रयुक्त होता है। ये पाँचों अर्थ एक दूसरे से घनिष्ठ संबन्ध रखते हैं। सामान्य काव्यशास्त्रीय भाषा में ध्वनि का प्रयोग व्यंजनार्थ केलिए हुआ करता है। आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' में कहा है-

'उक्त्यन्तरेणशक्यं यत्तच्चारुत्वं प्रकाशयन्
शब्दो व्यंजकतां विभ्रद्ध्वन्युक्तेर्विषयीभवेत्।।'[2]

---

1. *'वाक्यपदीयम्' (ब्रह्मकाण्डम्) श्लोकसंख्या - 102*
2. *'ध्वन्यालोक' - प्रथम उद्योत, श्लोक संख्या - 15*

अर्थात् ध्वनि का विषय वही शब्द हो सकता है 'जो व्यंजनावृत्ति का आश्रय लेकर ऐसी चारुता प्रकाशित करे जोकि व्यंजनावृत्ति से भिन्न किसी अन्य उपाय से प्रकाशित ही न की जा सके।'

इससे सिद्ध हो ही जाता है कि ध्वनिसिद्धान्त शब्दशक्तियों पर आधारित है; साथ ही व्यंजनाशक्ति का महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। इसप्रकार काव्यशास्त्रीय ध्वनि का मूलाधार व्यंजनाशक्ति है।

1.2.1 भाषावैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय ध्वनियों में अन्तर :-

दोनों ध्वनियों के बीच साम्य से अधिक वैषम्य है। साम्य यह है कि दोनों भाषाधिष्ठित है। भाषाविज्ञान में ध्वनि ही भाषा का प्राण है। जबकि काव्यशास्त्र में वाच्य से अधिक उत्कर्षक चारुता प्रतिपादक व्यंग्य ही ध्वनि है; और इस निगूढ़ व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति होती है भाषा ही के माध्यम से। अतः स्पष्ट है कि भाषा ही दोनों ध्वनियों का आधार या पहचान है।

'ध्वनि' शब्द दोनों में एक है, किन्तु उसके स्वरूप, आधार, परिभाषा, भेद या वर्गीकरण आदि में भिन्नता है। भाषाध्वनि का संबन्ध भाषा की बाह्य संरचना से हैं। अतः वह स्थूल है और उसका अस्तित्व प्रकट है। ध्वनिकाव्य वस्तुतः अर्थ पर आधारित है और यह अर्थ भाषा की आन्तरिक संरचना से संबद्ध है। इस दृष्टि से वह सूक्ष्म एवं अत्यन्त विशिष्ट है। भाषाध्वनि भाषा का प्रथम सोपान है और अपूर्ण भी; और यह कभी सार्थक और कभी निरर्थक होती है। मानव के द्वारा उच्चरित ध्वनि ही अधिक सार्थक है। ध्वनि जो है हर वस्तु से-चाहे निर्जीव हो या जीवन्त- निकलती है। निर्जीव वस्तुओं से निकलनेवाली ध्वनि निरर्थक होती है और कभी अव्यक्त भी हो सकती है। इसप्रकार ज़रूरी नहीं है कि भाषाध्वनि हमेशा सार्थक ही हों। जबकि काव्यशास्त्रीय ध्वनि में संपूर्णता है और यही काव्यभाषा को शक्ति प्रदान करती है।

भाषाविज्ञान में 'ध्वनि' का संबन्ध भाषा की अर्थशक्ति से न होकर उसके नादपक्ष से है। इसके विपरीत काव्यशास्त्र में ध्वनि का संबन्ध भाषा के नादपक्ष से न होकर उसकी अर्थशक्ति से है। इस प्रकार ध्वनि का प्रयोग काव्य और संगीत में अवश्य होता है।

1.3 संगीत : सामान्य परिचय

'संगीत' शब्द 'सम्' और 'गीत' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है सम्यक् गीत। संगीत वह ललित कला है जिसके द्वारा संगीतज्ञ अपने हृदयगत सूक्ष्म भावों को स्वर और लय की सहायता से प्रकट करते हुए संपूर्ण मानवजाति का रंजन कराता है। 'संगीतशास्त्र' नामक ग्रंथ में बताया गया है - "संगीत समुदायवाचक नाम है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है। ये कलाएँ गीत, वाद्य एवं नृत्य हैं। इन तीनों कलाओं में गीत का प्राधान्य है। अतः केवल संगीत नाम ही चुन लिया गया है।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि संगीत के तीन प्रमुख अंगों में से गीत या गायन ही प्रमुख है।

1.3.1 संगीत की उत्पत्ति एवं महिमा :-

वस्तुतः जगत् संगीतमय है। इसका आधार नाद है जो ब्रह्माण्ड के चराचर वस्तुओं में व्याप्त हैं, अतएव नादब्रह्म कहलाता है। मूलभूत नादब्रह्म ओंकार वाचक है जिससे संगीत की उत्पत्ति हुई है। शब्द और स्वर दोनों इसी से जन्मे हैं।[2] सब राग-रागिनियाँ उसमें सन्निहित है।

संगीत का सीधा संबन्ध मानवजीवन के भावात्मक स्तर से है। संगीत, नाद की भाषा है। इसमें स्वरों से काम लेता है और शब्दों का प्रयोग कम ही होता है। यह विकार की

---

1. पं. विष्णुनारायण भातखण्डे, 'संगीतशास्त्र' - भाग - 1 पृ. 5

2. भाषा की उत्पत्ति से संबद्ध सिद्धान्तों में से एक 'संगीतसिद्धान्त' भी है जिसपर आगे विचार करेंगे।

भाषा होने के साथ-साथ सार्वभौम भी है, और वह मात्र मनुष्य ही नहीं, पशु, शिशु, फणी आदि को भी आकर्षित एवं प्रभावित करता है - 'पशुर्वेत्ति शिशुर्वेत्ति गानरसं फणी।' जीवन्त वस्तुओं के समान ही जड़वस्तुओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। पुराणों से लेकर इसके प्रमाण मिलते हैं। संगीत की सहायता से बत्ती जलाये गये। अग्नि उत्पन्न करना, जल बरसाना, पौधों में फूल उगवाना आदि के द्वारा संगीत की क्षमता स्पष्ट हो जाती है। आजकल फसलों को बढ़ौती केलिए और गायों को दूधने में संगीत का उपयोग करते हैं।

संगीतकला न केवल संस्कृति के विकास का अंग हो नहीं, बल्कि वैज्ञानिक विकास का भी अंग बन चुकी है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि संगीत के प्रभाव से मानसिक ग्रन्थियों पर पड़नेवाले प्रभाव रोगोपचार केलिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ध्वनि की विशिष्ट गति व तारता आदि का प्रभाव, विशिष्ट वाद्यों की विशिष्ट ध्वनि तथा लय के सूक्ष्म विभाजनों आदि का प्रभाव मानव की हृदयगति पर पड़ता है, इसी आधार पर संगीत को चिकित्सा, विज्ञान में भी स्थान दिया गया है। संगीत के माध्यम से इसप्रकार की जानेवाली चिकित्सा, सांगीतिक चिकित्सा (Music therapy) के नाम से जानी जाती है। "निराश हृदय केलिए संगीत औषधि के सदृश है।"[1] एक रूसी प्रोफेसर का दावा है कि संगीत से २५ प्रतिशत नेत्रशक्ति बढ़ सकती है।

संगीत जनमानस की इच्छाओं का परिचायक हैं। इसलिए इसका प्रभाव अन्य कलाओं से अधिक शक्तिशाली तथा हृदयग्राही होता है। वह अपनी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है। इसप्रकार संगीत मानवजीवन से सीधा संबन्ध जोड़कर उसकी आत्मा को पवित्र एवं परिष्कृत करती है ; और इसके कई रूप हैं - शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत, फिल्मी संगीत, कविता में प्रयुक्त होनेवाला संगीत आदि।

---

1. *"Music is the medicine of the breaking heart" - A Hunt, 'The New dictionary of thoughts' P-414*

सभी ललितकलाओं में संगीत अन्तर्लीन है। ललित कलाओं में उपकरणों, शैली और शिल्प की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी परस्पर अन्तःसंबन्ध है। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला अपनी निजी विशेषताओं को बनाए रखते हुए एक दूसरे का आश्रय लेती है। ललितकलाओं का विज्ञान से भी गहरा संबन्ध है। श्रीनिवास रामानुज के नोटबुक्स में इसके उदाहरण मिलते हैं। एक प्रसिद्ध गणितज्ञ ने अपना मत व्यक्त किया है कि इसके सूत्रवाक्यों से गुज़रने पर माइकल आँचलो के 'दिन और रात' शिल्प के दर्शन करने की अनुभूति होती है।

संगीत कला जैसी अमूर्त श्रव्यकला, चित्रकला जैसी मूर्त दृश्यकला के अनेक गुणों का धारण करती है। पश्चिम में बहुत पहले से यह उक्ति प्रचलित है कि चित्र, मूक कविता है और कविता सवाक् चित्र है। भारत में प्रत्येक राग और रागिनी के भावलोक को रंगों के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न राजस्थानी चित्रकला 'रागमाला' में हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रयाग संग्रहालय, भारत कलाभवन-बनारस, विक्टोरिया मेमोरियल-कलकत्ता आदि संग्रहालयों में विभिन्न स्वर- लहरियों और रागों को मनोवैज्ञानिक संकेत-चित्रों द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं। इन चित्रों में राग-रागिनियों से संबन्ध वातावरण, दृश्य, विषय, रस, काल तथा भाव का ऐसा व्यंजक चित्रण रहता है कि चित्र को देखने मात्र से ही राग अथवा रागिनी के स्वरूप, प्रकृति, रस, समय आदि का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। क्योंकि स्वर का भी एक रंग होता है और प्रत्येक राग का अपने भाव के अनुसार एक चित्र भी होता है। इन रागमाला चित्रों के अन्तर्गत रागिनी केदारा, रागिनी तोड़ी, राग मल्हार, राग भैरव आदि कुछ उदाहरण है। रागमालाओं की कल्पना का प्रादुर्भाव काल 15 वीं शती के आसपास माना जाता है।

चित्र, संगीत एवं काव्यकला तो एक दूसरे में अन्तर्लीन होकर ही प्रभाव वृद्धि करती है और आकर्षक बनती है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने इन तीनों के संबन्ध में लिखा

है कि - 'काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिसप्रकार मूर्तविधान केलिए कविता चित्रविद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसीप्रकार नादसौष्ठव केलिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। ... नादसौंदर्य, कविता की आयु बढ़ाता है।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि तीनों कलाएँ एक दूसरे में अन्तर्लीन है। योरोप में तो संगीत की एक पद्धति का जन्म हुआ जिसमें प्रत्येक श्रुत ध्वनियों के रूप से दृश्य चित्र का अनुभव होता है। यह संगीतज्ञ बीथोवन था जिसने ध्वनिधारा सिम्फणी का आविष्कार किया। एक ध्वनिधारा-नाद के प्रभाव से एक चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न उसमें हुआ है।

दृश्य-जगत् का ध्वनि की भाषा में अनुवाद, जैसा कि रागमाला अथवा सिम्फणी में हुआ है चित्रकला के सौंदर्य का रहस्य है। चित्र में रेखाओं की भाषा का प्रयोग संगीत के स्वरों की भाँति होता है। रागमाला चित्रों के द्वारा नायिका-भेद के चित्रण ने भारतीय कला में काव्य, चित्र और संगीत की त्रिवेणी बहा दी है।

लय एक ऐसा तत्त्व है जो संगीत और काव्य में ही नहीं बल्कि सभी ललितकलाओं में अन्तर्निहित है। स्थापत्य जैसी स्थूलकला में लय का स्थान अक्षुण्ण रहता है। कलाशास्त्रियों ने स्थापत्यकला में प्रयुक्त लय को 'आर्किटेक्टोनिक रिद्म' कहा है। इससे स्पष्ट है कि लय की सार्वत्रिक विद्यमानता सभी कलाओं के अन्तःसंबन्ध के कारण है और यह संगीत का प्रधान तत्त्व है।

मूर्तिकला भी चित्रकला के समान दृश्यकला है, चाक्षुस प्रत्यक्ष पर अधिक निर्भर हैं, स्थूल साधनों के द्वारा अभिव्यक्ति और प्रेषणीयता को संपन्न करती है, तथा भाव के किसी आस्पद को देशीय अन्तराल में रखकर उपस्थित करती है।

---

1. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल - 'चिन्तामणि' - (भाग-2) पृ - 177-178

इस प्रकार सिद्ध है कि ललित कलाओं में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी माना है कि "संगीत, ललितकला का विशुद्धतम सर्वोच्चरूप है क्योंकि संगीत में सौंदर्य की सर्वाधिक ऋजु अभिव्यक्ति होती है।"[1] संक्षेप में ललितकलाओं के अन्तःसंबन्ध अटूट एवं सार्थक है।

1.3.2 शास्त्रीय संगीत के तत्त्व :-

शास्त्रीय संगीत ध्वनिप्रधान है, न कि शब्दप्रधान। इसमें महत्त्व ध्वनि के उतार-चढ़ाव का होता है। शब्दों का स्थान गौण है। अन्य कलाओं की भाँति संगीत भी प्रयोग पक्ष या अभिव्यक्ति पक्ष पर बल देते हैं। भरत पद्धति के अनुसार श्रुति से स्वर बनते हैं, स्वर से ग्राम, ग्राम से मूर्च्छना, मूर्च्छना से जाति बनते हैं। इन तत्त्वों के साथ राग, ताल, लय, गमक, मींड, मेल या थाट आदि तत्त्वों के सम्यक् विलयन से संपूर्ण संगीत रूपायित होता है।

नादः- संगीत से संबन्धित सबसे प्रमुख तत्त्व है नाद। वस्तुतः संपूर्ण ब्रह्माण्ड ही नादमय है इसका ग्रहण ध्वनि से होता है। प्रत्येक ध्वनि कंपन है और प्रत्येक कंपन में ध्वनि है। नियमित कंपन ही मधुर ध्वनि को उत्पन्न करते हैं जो संगीतोपयोगी होते हैं। इसी को संगीत में नाद की संज्ञा दी गई है। संगीत में नाद के दोनों रूपों - आहत, अनाहत - में से आहत को ही स्वीकार करते हैं।

श्रुतिः- संगीत का दूसरा प्रमुख तत्त्व है श्रुति। संगीतदर्पणकार के अनुसार प्रथमाघात से अनुरणित (प्रतिध्वनित) हुए बिना जो ह्रस्व नाद उत्पन्न होता है उसी को श्रुति कहते हैं। वह स्वयं रंजक नहीं, मगर स्वर को रंजक बनाने में सहायक होती है।

---

1. *"Music is the purest form of art, and therefore the most direct expression of beauty" - Rabindranath Tagore, 'Sadhana' P - 141-142.*

स्वर:- श्रुति के बाद संगीत में स्वरों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। संगीत की नींव ही स्वर है। उसका शरीर अथवा व्यक्तित्व ही स्वरों के ताने-बाने में निहित है। श्रुति में अनुरणन् होने पर वह 'स्वर' बन जाती है। संगीत स्वर सात हैं - षड्ज (स), ऋषभ (री), गान्धार (ग), मध्यम (म), पंचम (प) धैवत (ध) और निषाद (नि)।

स्थायी या सप्तक[1]**:-** सात स्वरों के क्रमानुगत रूप को एक स्थायी कहते हैं। स्थायी के तीन भेद हैं -

1. मन्द्र
2. मध्य
3. तार

भारतीय संगीत इन तीनों स्थायियों के भीतर स्थित है।

स्वर की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं-

गमक और लीनक।

गमक:- स्वरों के कंपन से श्रोता के हृदय को सुख देनेवाला तत्त्व है गमक। संगीत का सौंदर्य इसमें निहित है। जब ध्वनि किसी स्वर पर ठहरती नहीं और भिन्न-भिन्न युक्तियों से स्वर का स्पर्श कर दूसरे पर चली जाती है तो उसे गमक कहते है।

लीनक:- जब ध्वनि किसी एक स्वर पर देर तक एक तान में ठहरती है तो उसे ठहराव या लीनक कहते है।

पकड:- जिस स्वर समुदाय से किसी राग का बोध होता है उसे पकड़ कहते हैं। इससे रागों की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है।

1. दक्षिण के संगीत में जिसको स्थायी कहते हैं उसको हिन्दुस्तानी पद्धति में सप्तक कहते हैं।

रागः- गायन पद्धति में राग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रंजयति मनांसीति रागः' अर्थात् मन को रंजित करने से राग संज्ञा मिली है। इसकी उत्पत्ति मेल या थाटों से होती है। मेल या थाट स्वरों की एक विशिष्ट रचना है।

राग वह स्वर रचना है जिसमें स्वर संवाद-संबन्ध से परस्पर संबद्ध रहते हैं और रंजकता के कारण एक विशिष्ट प्रभाव श्रोता के मन पर अंकित करते हैं। इसप्रकार रंजकता राग का प्रमुख लक्षण है। राग जाति का ही विकसित रूप है। दूसरे शब्दों में दोनों पर्यायवाची शब्द है।

भारत की राग-रागिनी अपनी विशिष्ट परंपरा रखती है। इस परंपरा में राग-रागिनियों का निर्माण उनके स्वरों की प्रकृति के अनुसार हुआ है। श्रुति, स्वर का अस्तित्व, महत्ता तथा कार्यक्षमता राग में ही संभव है। उसीप्रकार इनके सहयोग से ही राग भी संभव है।

ग्राम :- स्वरों के समुदाय को ग्राम कहते हैं और ग्राम, मूर्च्छना के आधारभूत तत्त्व हैं-

"ग्रामः स्वर समूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः"[1]

मूर्च्छना :- यह राग को मूर्च्छित करनेवाला तत्त्व है। क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहलाते हैं - *"क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्वभिसंज्ञिताः।"*[2]

तान :- रागों के स्वल्प स्वरूप को तानने, विस्तृत करने तथा फैलाने को तान कहते है।

लयः- भारतीय संगीत के संबन्ध में कहा गया है कि, 'श्रुतिर्माता लयः पिता', अर्थात् गीत की श्रुति माता के समान है और लय पिता-समान। 'लय' शब्द का अर्थ है - संयोग, मिलन, एकरूपता आदि।

---

1. *शाङ्गदेव; 'संगीतरत्नाकर'*
2. *वही : द्वितीय भाग*

ताल :- लय को दर्शाने की क्रिया है ताल। लय को काल तथा क्रिया से नियन्त्रित करने पर ताल का उद्‌भव होता है। ताल ही गीत का नियन्त्रण करता है। लय स्वयं एक व्यापक एवं अखण्डित क्रिया है। इसको वांछित अन्तराल"[1] में बाँधकर क्रिया से दर्शाना ही ताल है। संगीत कला में स्वर और रागलक्षण के अतिरिक्त ताल, लय और मात्रा का भी ज्ञान आवश्यक है।

इस प्रकार संगीत के सभी तत्त्व एक दूसरे से काफी जुड़े हुए हैं।

1.3.3 हिन्दुस्तानी संगीत और कर्णाटिक संगीत का संबन्ध :-

आधुनिक भारतीय संगीत के दो भेद हैं। एक है उत्तरभारत में प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति और दूसरा है दक्षिण में प्रचलित कर्णाटिक संगीत पद्धति। शुरू में दक्षिण और उत्तर भारत में समान संगीत सरणी प्रचलित थी। मुगलों के आक्रमण, फारसी, अरबी भाषाओं के संपर्क आदि के कारण उत्तर भारत के संगीत पर विदेशी संगीत का प्रभाव पड़ा और हिन्दुस्तानी संगीत का जन्म हुआ; जबकि दक्षिण के संगीत वैसे के वैसे ही बना रहा। इतिहास एवं जन्मस्थान के आधार पर हिन्दुस्तानी संगीत को उत्तर भारत का संगीत कहने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उसे हम केवल उत्तर भारत का संगीत नहीं कह सकते। वह भारतवर्ष के उत्तर ही में सीमित न होकर पूरे भारतवर्ष में फैला हुआ है। सांस्कृतिक रूप से ये दोनों हमारी सांस्कृतिक आत्मा के दो अनिवार्य अंग है। श्रुति, स्वर, स्थायी या सप्तक, आरोह-अवरोह आदि में कर्णाटिक पद्धति से साम्य रखते हुए भी भाषा, गायनशैली, ताल पद्धति इत्यादि में हिन्दुस्तानी संगीत अलग है।

---

1. अन्तराल :- स्वरों के बीच के अवकाश को 'अन्तराल' कहते हैं।

1.3.3.1 समानताएँ :- श्रुति दोनों पद्धतियों में बाईस हैं, स्वर सात हैं, सप्तक तीन हैं, आरोह-अवरोह भी समान है। एक ही स्वर और एक ही स्थान-गले राग दोनों में मिलते हैं; जैसे - अभोगी, हंसध्वनि, मलयमारुत, चारुकेशी, सिंहेन्द्रमध्यम आदि। हिन्दुस्तानी में कर्णाटिक के समान समय ताल है जो कि जाति भेद के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। दक्षिण के संगीत में जो निरवल पद्धति[1] है उसके समान उत्तरी संगीत में बोलतान है। जनक-जन्य पद्धति, रागविभाजन पद्धति है, इसी का प्रयोग दोनों संगीत में होता है। राग, स्वर आदि को गाते समय प्रयोग में आनेवाले गमकों और अनुस्वरों के आधार पर दक्षिणी संगीत को पहचान सकते है। आगे दोनों की असमानताओं पर प्रकाश डालेंगे।

1.3.3.2 विषमताएँ :- कर्णाटिक पद्धति में भक्तिरस प्रधान है और हिन्दुस्तानी में श्रृंगार रस। दोनों की संगीतशैली भी भिन्न है। थाट-राग पद्धति दोनों में स्वीकृत है परन्तु बहत्तर (72) मेलकर्ता रागों में से केवल दस ही हिन्दुस्तानी में प्रयुक्त हैं, जबकि पूरे थाटों का प्रयोग कर्णाटिक पद्धति में आज भी होता है। रागालाप में भिन्नता है। हिन्दुस्तानी में राग मन्द्रस्थायी से शुरू होकर विलंबलय में एक एक स्थायी में देर तक गाते है। उसके बाद द्रुत प्रयोगों को मिश्रित करके राग को और भी सुन्दर बनाते हैं। किन्तु कर्णाटिक पद्धति में संगतियों,[2] गमकों को मिलाकर कम समय में श्रोताओं में रागभाव उत्पन्न करता है।

कर्णाटिक संगीत स्थान भेद के अनुसार बदलता नहीं, जबकि हिन्दुस्तानी में विभिन्न घरानों की उपस्थिति है। जैसे, आगरा घराना, ग्वालियर घराना, लखनऊ घराना, बनारस घराना इत्यादि।

हिन्दुस्तानी संगीत के दो भाग है स्थायी और अन्तरा; इसके समान कर्णाटिक संगीत में पल्लवी, अनुपल्लवी, और अन्तिम भाग को चरण्म् कहते हैं। और इसमें हिन्दुस्तानी की अपेक्षा गीत से बढ़कर ताल की अधिक प्रधानता है।

---

1. निरवल पद्धति - अनुपल्लवी (दक्षिण में) या अन्तरा (उत्तर में) के एक ही पंक्ति को विभिन्न स्वर प्रकार से गाना।

2. कई स्वरों के एक दी साथ उच्चारण को 'संगति' कहते है।

संक्षेप में हिन्दुस्तानी संगीत और कर्णाटिक संगीत दोनों, भारतीय संगीत रूपी वटबृक्ष की दो भिन्न शाखाएँ हैं, जिनके उद्‌भव स्थान एक होते हुए भी समयानुसार अलग-अलग दिशाओं में प्रवृत्त हो गए। इस दृष्टि से दोनों में समानताओं एवं असमानताओं की उपस्थिति स्वाभाविक ही है। भारतीय संगीत की यही महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें जिसप्रकार भाव और रस का एकाकार होता है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

1.4 काव्य और ध्वनि का संबन्ध :-

काव्य में ध्वनि की व्याप्ति शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थ व्यापार सभी में रहती है। काव्य का कोई भी ऐसा रूप नहीं है जो ध्वनि के बाहर पड़ता हो। उसकी सत्ता उपसर्ग और प्रत्यय से लेकर संपूर्ण महाकाव्य तक है। दूसरे शब्दों में व्याकरणिक ध्वनि से लेकर व्यंग्यार्थ तक की ध्वनि, दोनों का प्रयोग होता है।

काव्य का सामान्य माध्यम भाषा है। काव्य के मुख्य तत्त्व शब्द और अर्थ भाषाविज्ञान के ही अन्तर्गत आते हैं। कविता, कविता के रूप में जीवित रहती है और इसके मूल में, शब्दों के ध्वनिरूप में संबन्ध है। कविता का अर्थ, ध्वनिरूप में शब्दों की संरचना से उद्‌भूत होता है, और किसी कविता में अर्थ का विकास जो हम अनुभूत करते हैं, वह अन्ततः ध्वनियों की संरचना - निर्मिति होती है। काव्य के शिल्पपक्ष को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में भाषा - उनके ध्वनि, शब्द,पद, वाक्य, अर्थ आदि - अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करते है।

काव्य में अर्थसौंदर्य काव्यभाषा की व्यंजकता पर निर्भर करता है। काव्यभाषा का मुख्य प्रयोजन कथ्य को चारुत्वपूर्ण रूप में प्रस्तुत करना है। काव्यभाषा में व्याकरणिक ध्वनि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निरर्थक ध्वनियों के संयोग से भाषा की अर्थयुक्त इकाई शब्द रूपायित होता है और इसकी ध्वनि अर्थ को मूर्ताकार देने में काफ़ी सक्षम है।

विशिष्ट शब्द और विशिष्ट अर्थ के योग से श्रेष्ठ काव्य बनते है, जिसमें व्यंग्य अर्थ या निगूढ़ अर्थ की प्रधानता होती है। इसी को ध्वनिकाव्य कहते है। ध्वनि की सापेक्षिक प्रधानता के आधार पर काव्य के प्रमुखतः तीन भेद हैं - उत्तम काव्य, मध्यम काव्य और अधम काव्य।

काव्य का सर्वस्व अर्थ ही है। शब्द तो उसके वाहक है। शब्द और अर्थ दोनों अनुरणन् रूप में उपलक्षित होने वाला व्यंग्यार्थ ही 'ध्वनि' शब्द से अभिहित किया जाता है। ध्वनि का मूल लक्ष्य प्रतियमान अर्थ या व्यंग्यार्थ ही है और यही काव्य को वास्तविक सौंदर्य प्रदान करता है। ध्वनि के आधार पर काव्य का श्रेष्ठतम रूप है ध्वनिकाव्य और इसमें सर्वोत्तम है रसध्वनिपरक काव्य।

काव्य में अर्थ के अर्थ को व्यक्त करने वाली ध्वनि होती है। व्यंजना का आश्रय लेकर कवि की वाणी प्राचीन अर्थों से युक्त होने पर भी नवीनता को प्राप्त करती है। व्यंजना के आश्रय से कवि की कल्पना शक्ति भी उन्मेष प्राप्त करती है। कवि की कला नैपुण्य का एक प्रधान अंग शब्दों का चयन है। उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने भावों एवं विचारों को भाषा में मूर्त करने केलिए अर्थ के अनुरूप उचित शब्दों को चुन सके। बहुधा एक ही अर्थ के द्योतक कई पर्यायवाची शब्द होते हैं। समान अर्थ होने पर भी उनके प्रयोग में यत्किंचित् भिन्नता होती है। अतः अर्थ विशेष केलिए उनमें से किसी विशिष्ट शब्द का चयन करना पड़ता है।

संक्षेप में ध्वनि के दोनों रूपों-भाषावैज्ञानिक एवं काव्यशास्त्रीय-का काव्य के साथ अभेद्य संबन्ध है। ध्वनि के बिना काव्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

1.5 काव्य और संगीत का संबन्ध :-

वाणी के दो प्रसिद्ध रूप है काव्य और संगीत। इनका संबन्ध चिरन्तन है। दोनों ही मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के साधन है। जब संपूर्ण सृष्टि और मानव के कण-कण में संगीत व्याप्त है तो मानव द्वारा रचित काव्य में भी अवश्य संगीत है।

कविता कवि-हृदय का स्वतः स्फूर्त अनुभूति का स्रोत है जो समय पाकर प्रस्फुटित हो जाती है। वह मानव-हृदय की आकुल वीणा से निःसृत करुण संगीत है। काव्य और संगीत दोनों ही ललित कला के अन्तर्गत आते हैं। आचार्य शुक्लजी के अनुसार - "जिसप्रकार मूर्तविधान केलिए कविता चित्रविद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद सौष्ठव केलिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। नादसौंदर्य से कविता की आयु बढ़ती है।"[1] कविता के अन्य कलाओं से संबन्ध प्रकट होने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नादसौंदर्य या संगीत भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने में सहायक होता है।

संस्कृत साहित्य में संगीत और काव्य दोनों को सरस्वती के स्तनद्वय कहा गया है। इससे दोनों की श्रेष्ठता व्यक्त हो जाती है। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में 'मृदुललित पदावली"[2] कहकर काव्य को आन्तरिक संगीत से जोड़ दिया है। मैथिलीशरण गुप्तजी ने काव्य को भावमय तथा संगीत को ध्वनिमय कहा है। वस्तुतः कविता और संगीत का समन्वय ही काव्य का श्रेष्ठतम रूप है। श्रेष्ठकाव्य में संगीत का स्थान महत्त्वपूर्ण है। 'काव्यदर्पण' में कहा गया है कि ध्वनि केलिए शब्दालंकार की सृष्टि होती है और यह काव्य का एक संगीतधर्म है। काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग सहज ही आ जाता है और स्पष्ट है कि काव्य में संगीत का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में काव्य स्वतः संगीत है - "संगीत आकार प्रधान काव्य है,

---

1. *'चिन्तामणि' (भाग-1) पृ 123*
2. *भरत - 'नाट्यशास्त्र' (112 // 123) पृ.214*

काव्य सार्थक संगीत है।"[1] इस उद्धरण के अनुसार काव्य और संगीत परस्पर पूरक हैं। दोनों का, दोनों में समावेश रहता है। इनका संबन्ध मानव हृदय से होने के बावजूद भी, ये मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है। दोनों में भाव प्रधान है। काव्य और संगीत का उत्पत्ति स्थान एक ही है - नाद। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने भी संगीत और काव्य के पारस्परिक संबन्ध और महत्त्व को स्वीकार किया है - "संगीत - कला का संवादक नाद है। ...शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भावभूमि पर पाठक को ले जाते हैं, वहाँ नाद के द्वारा आश्रय विधान भी करते है। काव्यकला का आधार भाषा है जो नाद का भी विकसित रूप है। अतः काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है।"[2] इस उद्धरण में नाद को ही प्रमुखता दी गई है। संगीत का आधार नाद है और काव्य का आधार भाषा है जो नाद का भी विकसित रूप है। इससे काव्य और संगीत के साथ ध्वनि का भी संबन्ध स्थापित हो जाता है।

सचमुच कविता में ध्वनि और लय दो ऐसे तत्त्व हैं, जिनका संगीत से निकट संबन्ध है। प्रधानतः इन्हीं दो तत्त्वों के कारण काव्य में संगीत का आधान होता है। अतः हम जब काव्य में संगीत की चर्चा करते हैं, तब हमारा आशाय संगीत की सपूर्ण शास्त्रीयता से नहीं रहता। आगे यथास्थान इसपर सविस्तर विचार किया जाएगा। अत्याधुनिक कविता में तथा मुक्तछन्द में भी संगीत है; क्योंकि उनमें लय की प्रधानता है। फिर भी काव्य में छन्द से युक्त लय ही अधिक मनोरम है। शुक्लजी का कथन सही है कि "छन्द के बन्धन के सर्वथा त्याग से हमें तो अनुभूत नादसौंदर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखायी पड़ता है।"[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छन्द और उसमें जो लयात्मकता है वहीं संगीत का रूप धारण कर लेता है। कविता जबतक गायी नहीं जाती तब तक वह अपना पूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाती, उसीप्रकार संगीत भी जब तक गीत से युक्त नहीं होता तबतक पूर्णतः प्रभावोत्पादक नहीं बनता।

---

1. *गुलाब राय : 'सिद्धान्त और अध्ययन' - पृ. 111*
2. *आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - 'साहित्य का मर्म' - पृ - 11*
3. *'चिन्तामणि' (भाग-1) पृ 124*

काव्य और संगीत कलात्मक, रसात्मक, अमूर्त एवं गतिशील होते हुए भी मूल रूप में एक दूसरे से भिन्न है। दोनों के बीच घनिष्ठ संबन्ध होने के बावजूद भी काव्य अलग वस्तु है, संगीत, और वस्तु। स्वरूप, भेद, अभिव्यक्ति, क्षेत्र विस्तार और प्रभावोत्पादकता आदि में दोनों भिन्न है।

काव्य की अभिव्यक्ति शब्द द्वारा होती है और संगीत नाद या स्वर द्वारा अभिव्यक्ति पाता है। "काव्य का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप है, और संगीत का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह - अवरोह है।"[1] स्पष्ट है कि दोनों का आधार नाद होते हुए भी, उसमें भिन्नता है। क्षेत्रविस्तार की दृष्टि से काव्य, संगीत की अपेक्षा विस्तृत है। काव्य में संगीत की अपेक्षा सभी भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। फिर भी प्रभाव की दृष्टि से संगीत ही श्रेष्ठ है। काव्यकला का प्रभाव मानव, विशेषकर शिक्षित सहृदय तक ही सीमित है, जबकि संगीत का प्रभाव समस्त चराचरों पर पड़ता है। काव्य के व्यापक प्रभाव में बाधा डालनेवाला प्रमुख तत्त्व है भाषा। संगीत में भाषा का स्थान गौण है, पर काव्य में भाषा ही प्रमुख है। यही नहीं संगीत में काव्य के समान अर्थगुम्फन भी अधिक नहीं होती। इसी कारण से कोई भी व्यक्ति इसका आस्वादन कर सकता है जो भले ही संगीत की अच्छी जानकारी न भी रखता हो।

संगीतज्ञ केलिए कवि के समान अर्थपूर्ण शब्दों का सहारा नहीं मिलता है। उसके सम्मुख केवल सात स्वरों का उतार-चढ़ाव ही एकमात्र माध्यम है जिसके द्वारा उसको अपनी संपूर्ण कला का प्रदर्शन और वातावरण की सृष्टि करना पड़ता है; जबकि साहित्यकार केलिए पर्याप्त सामग्री मिलते हैं। यह काव्य और संगीत के बीच का एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है, साथ में संगीत की महत्ता भी उजागर होती है।

---

1. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - 'साहित्य का मर्म' पृ 11

पहले ही संकेत किया जा चुका है कि काव्य और संगीत में छन्द का समान महत्त्व है, लेकिन उसके प्रयोग में भिन्नता है। "संगीत के स्वरों की मात्राओं और छन्दशास्त्र की मात्राओं में अन्तर होता है। छन्दशास्त्र के गुरु और लघु की एक और दो मात्राएँ ही होती है, किन्तु संगीत-नाद में एक वर्ण में चार और छः मात्राएँ भी होती हैं। अतः गायक को संगीत के स्वरों की मात्राओं को आलाप द्वारा घटाने-बढ़ाने की पूरी छूट होती है।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म रूप से दोनों के छन्द प्रयोगों में अन्तर है, यही नहीं संगीतज्ञ, कवि से ज़्यादा स्वतन्त्र है।

इस प्रकार काव्य और संगीत के बीच अटूट संबन्ध के होते हुए भी दोनों भिन्न है। यदि कुछ गुणों में काव्य संगीत से श्रेष्ठ है तो कुछ में संगीत भी काव्य की अपेक्षा उच्च स्थान ग्रहण किए हुए है। काव्य और संगीत का अपना अलग अस्तित्व है, किन्तु प्रभाववृद्धि केलिए दोनों का पारस्परिक मिलन अत्यावश्यक है। अर्थात् भावपूर्ण शब्दयोजना जो काव्य की निधि है, के अभाव में संगीत उसीप्रकार कम प्रभावोत्पादक होता है जिसप्रकार संगीत के अभाव में काव्य। वास्तव में कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत स्वरों के रूप में कविता है। कविता में संगीत जब काव्यत्व की रक्षा करते हुए सुनियन्त्रित ढंग से समाहित हो जाता है, तब कविता की प्रेषणीयता और शिल्प में एक चमत्कार आ जाता है। निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि काव्य और संगीत दोनों अपना-अपना अलग अस्तित्व रखते हुए परस्पर पूरक है।

1.5.1 बाह्य संगीत और आन्तरिक संगीत :-

संगीत दो प्रकार के माने गए है - एक वह है जो शास्त्रीय संगीत संबन्धी नियमों पर आधारित है, जिसे बाह्य संगीत या विशुद्ध संगीत भी कहते हैं। इसमें संगीतोपयोगी गीत को स्वर ताल से युक्त करने का प्रयास होता है। दूसरे प्रकार के गीत शब्दसौंदर्य और नादसौंदर्य

1. *डॉ. आशा प्रसाद -'सूरकाव्य में संगीततत्त्व' - पृ. 38*

से युक्त होते हैं अर्थात् संगीत केलिए भी उपयोगी है, जिसमें आन्तरिक संगीत का प्रयोग होता है। इसी का प्रयोग काव्य में अधिक रूप से होता है।

'आधुनिक हिन्दी प्रगीत में संगीततत्त्व' नामक ग्रंथ में बताया गया है कि "जहाँ काव्य में शब्दालंकार, छन्द, गुण, वृत्ति, रीति, अर्थध्वननकारी शब्दयोजना, संगीतात्मक पारिभाषिक शब्दावली आदि के संप्रयोग से नादात्मक अनुरणन् के लयात्मक प्रवाह की योजना होती है, वहाँ आन्तरिक संगीत समाहित हो जाता है।"[1]

वस्तुतः काव्यगत संगीतात्मकता को विशुद्ध संगीत से पृथक् मानना चाहिए। 'राधावल्लभ संप्रदाय' ग्रंथ में इसका समर्थन मिलते हैं कि - "काव्य का संगीत गायकों के गीतों के संगीत से कहीं अधिक सूक्ष्म एवं गहन होता है, और सचमुच ऐसे ही उच्च संगीत के योग से गीतकार अपने प्रबल मनोवेगों की, गीतियों की अभिव्यंजना कर सकता है।"[2] काव्य का यह संगीत आन्तरिक लय से उद्भूत होता है। साथ में यह भी ज्ञात हो जाता है कि काव्य का संगीत शुद्धशास्त्रीय संगीत से काफी अलग है।

उचित स्थान में शब्दों को रख देने से कोई कृति श्रेष्ठ नही बनती। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द जब तक अन्तः संगीत से झंकृत नहीं होता तब तक वे अपनी रमणीयता से अपना अर्थ आप प्रकट करने में समर्थ नहीं हो पाता। कविता का श्रोता या पाठकों पर पूर्ण प्रभाव केलिए उसमें संगीतात्मकता का होना बहुत ज़रूरी है। काव्य में रोचकता, रुचिरता और माधुर्य लाने केलिए संगीत विधान आवश्यक है। कविता और संगीत के अन्योन्याश्रित संबन्ध को स्वीकारे हुए निरालाजी मानते हैं कि काव्य एक और कला है और संगीत एक और। उनके शब्दों में "शब्दशिल्पी संगीतशिल्पियों का नकल न करें।"[3] अर्थात् कवि को कभी भी संगीतज्ञ का

---

1. *विमलागुप्ता-'आधुनिक हिन्दी प्रगीत में संगीततत्त्व' - पृ -2*
2. *डॉ. विजयेन्द्र स्नातक - 'राधावल्लभ संप्रदाय' - पृ -334*
3. *निराला - 'रवीन्द्र-कविता-कानन' - पृ 140*

नकल नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि "कविता भावात्मक शब्दों की ध्वनि है अतएव उसकी अभिव्यंजना केलिए भावपूर्वक पढ़ना भी ठीक है। किसी अच्छी कविता को राग-रागिनी में भरकर स्वर में माँजने की चेष्टा करना उसके सौंदर्य को बिगाड़ना अच्छा नहीं है।"[1]

कविता के अस्तित्व एवं सौंदर्य की हत्या करके उसे संगीत में ढालना उचित नहीं है। प्रसाद और निराला दो ऐसे कवि हैं, जिनके गीतों में इस औचित्य का पूर्ण रूप से निर्वाह आन्तरिक संगीत द्वारा हुआ है। साथ में गीतों को शास्त्रीय परिवेश देने का भी प्रयास दिखाई पड़ते हैं। उनमें शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों को लेकर संगीतात्मक अनुभूति को उभारना ही उनका लक्ष्य रहा है। इस दृष्टि से निराला को 'गीतिका' संगीत-काव्य क्षेत्र में एक नूतन प्रयोग है, जिसके द्वारा उन्होंने संगीत और काव्य के क्षेत्र में क्रान्ति लाने प्रयत्न किया। प्रसादजी की काव्य रचनाएँ भी इन तत्त्वों से अनुग्रहीत हैं। काव्य और संगीत के विस्तृत अध्ययन के बाद ध्वनि और संगीत के मंबन्ध को उजागर करना युक्तिसंगत है।

1.6 ध्वनि और संगीत का संबन्ध :-

ध्वनि और संगीत के पृथक्-पृथक् परिचय हो चुके हैं। ध्वनि के दोनों रूपों- भाषावैज्ञानिक एवं काव्यशास्त्रीय - से संगीत का संबन्ध है। वैयाकरणों द्वारा नाद के कारणभूत वर्णों को ध्वनि कहा गया है और नाद को व्यंजक। इसी को आनन्दवर्धन ने भी स्वीकार किया है। उन्होंने अर्थविस्तार एवं प्रतीयमान अर्थ दोनों को 'ध्वनि' संज्ञा दी है।

'काव्यदर्पण' में कहा गया है कि शब्द के प्रमुखतः दो रूप हैं ध्वनि और अर्थ, और ध्वनि को लेकर शब्दालंकार की सृष्टि होती है। यह काव्य का संगीत धर्म है। इससे ध्वनि और संगीत का संबन्ध भी स्पष्ट हो जाता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'ध्वनिमय संगीत'

---

1. निराला - 'रवीन्द्र-कविता-कानन' - पृ 150

कहकर ध्वनि और संगीत के पारस्परिक संबन्ध को स्थापित किया है। इसके अनुसार संगीत के मूल में ध्वनि निहित है चाहे वह भाषावैज्ञानिक हो या काव्यशास्त्रीय ध्वनि हो।

भाषा मनुष्य के लिए ईश्वर का वरदान है। इसकी उत्पत्ति से संबन्धित कई सिद्धान्तों का उल्लेख भाषाविज्ञान में मिलते हैं। इनमें से एक प्रमुख सिद्धान्त 'संगीत सिद्धान्त'[1] भी है। इसमें भाषा की उत्पत्ति आदिम मानव के संगीत से मानी जाती है। डार्विन तथा स्पेंसर ने इसे एक हद तक माना है। येसपर्सन ने भी इसका समर्थन किया है। इनके अनुसार गुनगुनाने से प्रारंभिक अर्थविहीन अक्षर बने और विशेष स्थिति में उनका प्रयोग होने से उन अक्षरों से अर्थ का संबन्ध हो गया। इससे स्पष्ट हो ही जाता है कि भाषा की उत्पत्ति में ध्वनि के साथ-साथ संगीत का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

संगीत नाद की भाषा है। नाद का ग्रहण ध्वनि से होता है। प्रत्येक ध्वनि कंपन है और प्रत्येक कंपन में ध्वनि है। कंपन नियमित और अनियमित दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें से नियमित कंपनों से संगीत का संबन्ध है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी संगीत-सृष्टि ध्वनि आन्दोलनों या कंपनों का परिणाम है।

संगीतशास्त्र के अनुसार ध्वनि के दो रूप हैं - आहत और अनाहत। समस्त जीवजन्तुओं को सुनाई देनेवाली, लौकिक एवं अलौकिक सुख को प्रदान करनेवाले नाद को 'आहत' कहते हैं तथा योगियों को सुनाई देनेवाले और मोक्षप्राप्ति के कारणभूत नाद को 'अनाहत' कहते हैं। संगीत का सीधा संबन्ध आहत नाद से है। ध्वनि के कई भेद मिलते हैं मगर संगीतोपयोगी नाद का संबन्ध कुछ ही ध्वनियों से है। जिस ध्वनि में ठहराव एवं मधुरता हो जो श्रवणेन्द्रिय को प्रिय लगे उसे ही संगीतोपयोगी नाद कहा जाता है।

---

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी - 'भाषाविज्ञान कोश' पृ - 448

भौतिकी की दृष्टि से नाद या ध्वनि के तीन लक्षण है - तारता, तीव्रता और गुण। स्वर की तारता स्वरोत्पादक वस्तु की आवृत्ति पर निर्भर है। जिन नादों का उपयोग संगीत में होता है उनकेलिए कानों की क्षमता काफी संकुचित है। संगीत के स्वर कम से कम 40 और ज़्यादा से ज़्यादा 4000 आवृत्ति के होने चाहिए।[1] तीव्रता नादोत्पादक वस्तु के कंपन विस्तार[2] पर निर्भर है। नाद का तीसरा लक्षण है गुण। एक वस्तु की आवाज़ दूसरी वस्तु की आवाज़ से भिन्न है चाहे वह मनुष्य की हो,जानवर की हो, या बाजे की हो, और स्वर की इसी विशेषता को उसका गुण कहते है। छनि के कंपन के आधार पर उसे गमक, लीनक आदि कहते हैं जो कण्ठ-संगीत केलिए अत्यन्त आवश्यक है। कण्ठ-संगीत में सहायक होनेवाला एक भाग है अभिकाकल।[3] भाषण या सामान्य बोलचाल से इसका सीधा संबन्ध तो नहीं है, मगर गायन में यह बहुत कुछ काम करता है। गायन में आ, ऑ, ई, ए आदि का प्रयोग सामान्य बोलचाल से अधिक होते हैं, और ध्वनिविदों के अनुसार अभिकाकल का संबन्ध कण्ठ-संगीत से है।

भाषाविज्ञान में भाषाध्वनि को महत्त्व दिया है जिसके उच्चारण पर भी बल दिया है। ध्वनि भावाभिव्यक्ति का बड़ा साधन है। हम एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न प्रकार से उच्चरित करके विभिन्न भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। ध्वनि का जीवन्त रूप बोलने-सुनने में निहित हैं, और संगीत में इसी प्रकार की ध्वनियों की ही प्रधानता है।

एड्वेर्ड हानस्लिक ने संगीत के सौंदर्य को किसी बाह्य विषय पर निर्भर न मानकर कलात्मक विधि से संयोजित ध्वनियों में माना है। उनके अनुसार "मूलतः आनन्ददायी

---

1. *प्रो. ललित किशोर सिंह - 'ध्वनि और संगीत' - पृ 48*
2. *कंपनविस्तार - एक स्थान से दूसरे स्थान तक के कंपन के बीच की दूरी को कंपनविस्तार कहते है।*
3. *अभिकाकल - मनुष्य शरीर की भोजन नलिका के विवर के पास श्वासनलिका की ओर झुकी हुई छोटी सी जीभ।*

ध्वनियों का संयोजन उन ध्वनियों का आवर्तन, पुनरावर्तन, उनकी तीव्रता और मन्दता ही वह संगीत सौंदर्य है।"[1] इसमें संगीत का आधार ध्वनि माना गया है, साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संगीत का सौंदर्य किसी छनिविशेष में न होकर कतिपय सांगीतिक ध्वनियों के विशेष संयोजन में है। अतः मात्र ध्वनि नहीं, ध्वनियों का कलात्मक संयोजन ही प्रभाव उत्पन्न करता है। यह प्रभाव प्रतीयमान है, क्योंकि सांगीतिक योजना किसी ध्वनिविशेष से नहीं होता। समर्थ रचनाकार स्वर और व्यंजनों का चयन इसप्रकार करता है कि वे शब्दों द्वारा यथेच्छ प्रभाव डालने में सक्षम होते हैं। शब्द-संगीत और शब्दार्थ की पारस्परिक मैत्री द्वारा भी कवि अपनी बात कह देता है। शब्दों के अर्थ के अतिरिक्त उनका संगीत भी कवि के भावों को व्यक्त करने में समर्थ होता है। संगीत मूल अनुभूतियों को सीधे प्रेषित करता है। उसमें भाव, रूपाकार धारण करता है और पुनः श्रोता में वह भाव उत्पन्न करता है। भाव की यह स्थिति प्रतीयमान ही हो सकती है अन्यथा नहीं।

संक्षेप में ध्वनि से उत्पन्न प्रतिभास है संगीत। वस्तुतः जगत् संगीतमय है। इसका आधार नाद है जो ब्रह्माण्ड के चराचर वस्तुओं में व्याप्त है। नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा उद्‌भूत होती है। भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है। अतएव संपूर्ण सृष्टि ही नाद के अधीन है और यही नाद, संगीत का भी आधार है।

1.7 काव्य, ध्वनि और संगीत :-

काव्य, ध्वनि और संगीत इन तीनों तत्त्वों का परस्पर संबन्ध अत्यन्त गहन, सूक्ष्म एवं व्यापक है। तीनों तत्त्वों में से सबसे सूक्ष्म एवं महत्त्वपूर्ण तत्त्व ध्वनि ही है, जो काव्य और संगीत के आधारभूत तत्त्व है; और दोनों को मिलाने वाली कड़ी भी। काव्य में व्यंजक अर्थ

---

1. Edward Hanslick - 'The Arts and art criticism' P. 338

और भाषाध्वनि के रूप में और संगीत के आधार नाद के रूप में यही ध्वनि आती है। काव्य के बिना संगीत और संगीत के बिना काव्य के चाहें तो अलग अस्तित्व हो सकते हैं; मगर ध्वनि के बिना न तो काव्य की कोई अस्मिता है न ही संगीत का।यही ध्वनि की सबसे बड़ी विशेषता है।

काव्य में शब्दों या ध्वनियों की आवृत्ति से विशेष प्रकार का लय उत्पन्न होता है जो संगीतात्मकता का रूप धारण करते हैं। इससे ध्वनि और संगीत का संबन्ध काव्य के माध्यम से स्पष्ट हो ही जाता है।

संगीत अपने स्वभाव में सूक्ष्म है। संगीतात्मक वाक्य भाषा की तरह शब्दार्थ से युक्त नहीं होते, वे लय संपृक्त स्वरावलियों के द्वारा भावों की व्यंजना करते हैं। भाषा की जकड़बन्दी से रहित होकर भी संगीतात्मक शब्दावली अर्थध्वनन में सक्षम रहती है। रस की दृष्टि से संगीतात्मक अभिव्यक्ति सदैव ध्वनित होती है। संगीत निराकार होता है और यही शब्दार्थयुक्त भाषा की जड़ता को ग्रहण करके साकार बन जाया करता है। इस प्रकार काव्य, ध्वनि और संगीत का पारस्परिक संबन्ध स्पष्ट हो जाता है। आगे विभिन्न युगों के हिन्दी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व को परखना युक्तिसंगत होगा।

1.8 विभिन्न युगों के हिन्दी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व :-

ध्वनि एवं संगीत तत्त्व सदियों की यात्रा करके, बड़े-बड़े परिवर्तनों के बीच में से गुज़रकर, इक्कीसवीं शताब्दी तक पहुँचे हैं। परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करके ही प्रत्येक कला उन्नति करती है; चाहे वह काव्यकला हो या संगीतकला। इसी मूलभूत तत्त्व को आधार बनाकर ही इस अध्ययन को सार्थक बना सकते है।

काव्य का नवजीवन केवल भाषापरिवर्तन से ही संभव है। अत्यधिक व्यवहृत होने पर भाषा धीरे धीरे जड़ता को प्राप्त होती जाती है। मनुष्य विकासशील प्राणी है और उसी के द्वारा समाज में परिवर्तन आता है। अतः समयानुसार भाषा में परिवर्तन भी अपेक्षित है। हर युग की भाषा में प्रयुक्त ध्वनिखण्ड पिछले युग के ध्वनिखण्ड से भिन्न होते हैं। अतः अर्थ एवं भाषा में परिवर्तन स्वाभाविक ही है।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी युगानुसार भाषा के स्तर पर एवं कविता की संरचना के स्तर पर काफी परिवर्तन आए हैं और आते ही रहेंगे। यह परिवर्तन विभिन्न प्रकार के होते हैं - समाज का प्रभाव (तत्कालीन समाज में प्रचलित भाषा), कवि की वैयक्तिक अभिरुचि, शब्द-संपदा, अभिव्यक्ति क्षमता, शब्दों के चयन, निपुणता आदि। अतः कवि की भाषा क्षमता मात्र शब्द कोश के आधार पर नहीं आँकी जा सकती, वरन् उचित सन्दर्भ में प्रयोग ही सर्वप्रमुख है।

संस्कृत काव्यों में ध्वनि की सुदीर्घ एवं पुष्ट परंपरा रही है। दसवीं शती की कविता ध्वनि के संस्पर्श से आदर पा चुकी है। उसीप्रकार आधुनिक युग में श्रेष्ठ कही जानेवाली कविताओं का भी ध्वनि से गहरा संबन्ध है।

भाषा के मूलभूत तत्त्व मुख से निःसृत ध्वनि है। किसी जाति, युग, भाषा की संगीतचेतना उसके मौखिक उच्चारण के अनुरूप ही विकसित होती है। इस दृष्टि से देखें तो ध्वनि भी बदलती है, अर्थात् ध्वनि का उच्चारण बदलता है। भाषिक विकास के क्रम में वैदिक भाषा से अपभ्रंश तक प्रादेशिकता का प्राधान्य नहीं रहा किन्तु उसके पश्चात् भाषाओं के विविध रूप क्षेत्रीय आधार पर विकसित हुए और उन भाषाओं की अपनी लयात्मकता, संगीतात्मकता एवं वर्ण-सन्निधि का विकास हुआ। प्रारंभ में तालव्य ध्वनियों का प्रयोग होता था, बाद में दन्त्यवर्णों का प्रयोग होने लगा। भक्तिकालीन कवि जयदेव दन्त्यवर्णों के प्रयोग

पर बल देते थे। आधुनिक काल में निराला ने दन्त्यवर्णों का प्रयोग अधिक किया है। उनके अनुसार, भारतीय कविता का भावपक्ष दन्त्यवर्ण प्रयोगों की प्रकृति का ही अनुसरण करता है। व्रजभाषा में स्वर ध्वनि की बहुलता थी। आधुनिक खडीबोली तक आते-आते व्यंजन ध्वनियों का भी अधिक प्रयोग होने लगा। इसी के साथ-साथ संगीत का स्वरूप भी बदला।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ध्वनि और अर्थ का संबन्ध गहरा है। उसको अर्थ से पूर्णतः अलग करके समझा नहीं जा सकता। कविता मूलतः मनुष्य के अन्तःकरण से संबन्धित है। कभी वह भावरूप होती है तो कभी विचाररूप। भाषा का प्राण है अर्थवत्ता और अभिव्यक्ति क्षमता का मूल है शब्दशक्ति। भाषा की चरमसिद्धि अभीष्ट अर्थ की पूर्णतः अवगत कराने में निहित है। व्यंजनाशक्ति भाषा की अनिवार्य गति है। भाषा की स्थिति उसकी गति में है। देश कालानुसार उसमें नये-नये शब्द जुड़ते जाते है। फिर भी समय-समय पर भाषा के साधारण प्रयोग द्वारा जब भाव प्रेषणीय नहीं बन पाता तो उस विशेष, वक्र प्रयोग का आश्रय लिया जाता है। अपने ठीक अर्थ में क्लिष्ट शब्दयोजना तथा उनका नवीन प्रयोग भाषा की शक्ति में बल लाता है। इसमें हिन्दी की व्यंजनाशक्ति की अभिवृद्धि ही हुई है।

ध्वनि ही काव्यभाषा का मूलाधार है। पहले ही सूचित किया जा चुका है कि युगानुसार काव्यभाषा का रूप बदलता रहता है। नवीन भावबोध को परंपरागत भाषा के माध्यम से व्यक्त करना दुष्कर होता है। जब भावों में सूक्ष्मता एवं अनुभूतियों में वैचित्र्य होता है तब यह स्थिति आ जाती है। निराला ने अपने निबन्ध में लिखा भी है कि "भाषा भी समयानुसार अपना रूप बदलती रहती है। कला के विकास के साथ-साथ साहित्य में नयी भाषा भी विकसित होती है।"[1]

---

1. निराला रचनावली (खण्ड-5) पृ - 358

आदिकालीन काव्यभाषा से बिल्कुल भिन्न है भक्तिकालीन काव्यभाषा। प्राकृत, अपभ्रंश से भिन्न भक्तिकाल में अवधी, व्रजभाषा का प्रचुर प्रयोग हुआ है। ध्वनि, शब्द, पद आदि के प्रयोगों में भिन्नता आ गई है।

रीतिकालीन काव्यभाषा में बाह्य वर्णन की प्रधानता थी। इस युग के कुलपति मिश्र, श्रीपति, भिखारीदास जैसे विशिष्ट आचार्यों ने भी किसी मौलिक सिद्धान्त की स्थापना नहीं की है, जिससे काव्य के अध्ययन एवं मूल्यांकन में कोई नई दिशा प्राप्त कर सके।

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध और आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध में खड़ीबोली का आविर्भाव हुआ। दिवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक काव्यशैली से भिन्न होकर छायावादी युगीन कवियों ने शब्दों को चुनकर भाषानुरूप प्रस्तुत किए। इससे सिद्ध हो जाता है कि काव्य में ध्वनि का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

छायावादी कविता से भिन्न प्रगतिवादी कविता में अभिधेयात्मकता तथा सरल शब्दयोजना पर बल दिया है। सरल भाषा के साथ-साथ उन्होंने ऐसी व्यंग्यात्मक रचनाएँ भी बहुत लिखीं जिनमें व्यंजना की प्रमुखता थी और ये प्रायः यथार्थपरक रही है।

शब्द और अर्थ का विकसित रूप प्रयोगवाद में जाकर और अधिक मिलता है। इस युग में नितान्त नवीन शब्दों का निर्माण हुआ। भाषा में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रयोगवाद और नयीकविता में स्पष्ट दीखता है। अन्य भाषाओं से शब्दग्रहण यद्यपि छायावादी रचनाओं में भी मिलते हैं तथापि उसके अर्थग्रहण में और भावप्रवाह में कोई गतिरोध नहीं था। किन्तु छायावादोत्तर रचनाओं में अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से पाठकों को अर्थग्रहण करना कठिन होता है,यही नहीं भाषा की सहजता एवं प्रवाह भी नष्ट हो जाता है। नयी कविता के संबन्ध में कहें तो नादात्मक या ध्वन्यात्मक शब्दों जैसे 'फर-फर', 'किन-किन', 'झोर-झोर' आदि का प्रयोग ग्रामीण धुनों पर आधारित गीतों में हुआ है।

पूर्ववर्ती रचनाओं के संबन्ध में केवल इतना कहना पर्याप्त था कि अमुक रचना में अमुक ध्वनि है, अथवा उसका अमुक अंश व्यंजक है। किन्तु आज केवल इतना कहने से रचना विशेष का सम्यक् मूल्यांकन संभव नहीं। आज रचना का विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इसके बाद ही रचना की मूल ध्वनि एवं उसके आन्तरिक कथ्य तथा उसके लय की खोज उपयुक्त होगी।

भारतीय संगीत की परंपरा वेदों से ही आरंभ हो जाती है। वेद के मंत्रों और सूक्तों में विशेषकर सामवेद और उससे संबद्ध ब्राह्मण ग्रंथों में संगीत के स्वरूप अधारभूत स्वर, रचनाविधि आदि का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

भारतीय संगीत सदा से परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन युग में संगीत की जो रूपरेखा थी वह आज बदल चुकी है और आधुनिक युग में जो संगीत प्रचलित है वह भविष्य में परिवर्तित होने की संभावना है। इसलिए हर युग के संगीतशास्त्र के आधार पर ही तत्कालीन साहित्य के संगीत को भी परखना चाहिए।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से भारत में मुसलमानी शासनकाल आरंभ होता है। उनके आक्रमण तथा भारत पर उनके आधिपत्य के साथ मूल उत्तरभारतीय संगीत में फारस के संगीत का मिश्रण हुआ और उसमें परिवर्तन आने लगा। जबकि दक्षिण भारत में मूल भारतीय संगीत अक्षुण्ण रहा।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल के आस पास संगीत की अत्यधिक उन्नति हो चुकी थी। उस समय तक राजदरबारों में भी संगीत का प्रवेश हो चुका था।

बारहवीं शताब्दी में जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' तत्कालीन युग के संगीत के परिचायक है। अमीरखुसरो के युग में भारतीय और फारसी संगीत के समन्वय से जिस अभिनव संगीत

शैली का प्रादुर्भाव हुआ वह अकबर के समय (सोलहवीं शताब्दी) अपने चरमोत्कर्ष को पहुँच चुकी थी। इस दृष्टि से यह युग संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है। अमर गायक तानसेन, बैजुबावरा, रामदास आदि महान व्यक्तियों का जन्म इसी युग में हुआ था। उत्तरी शास्त्रीय संगीत पद्धति का उन्मेष इसी समय हुआ था।

भारतीय संगीत सदैव से परिवर्तनशील अवश्य रहा है, परन्तु कतिपय अपवादों को छोड़कर एक ही युग में दो राग भिन्न प्रकार से गाये जा सकते, अतः जो राग उस युग के कलाप्रेमी दरबार गायक प्रयुक्त कर रहे थे, उन्हीं को भक्त लोग भी प्रयोग में लाते थे, फिर भी दोनों के प्रयोग में भिन्नता थी।

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत में सबेरे, दोपहर, रात आदि समयों में गाये जानेवाले रागों के अलग विभाग है, यह विभाजन आज भी स्वीकृत है। उदाहरण केलिए राग भैरव और रामकली के गाने का समय सूर्योदय के आसपास है बिलावल का प्रातः काल का प्रथम पहर, कल्याण का रात्रि का प्रथम पहर, कानड़ा का मध्य रात्रि, अड़ाना का रात्रि का तृतीय पहर। यह निर्धारण पूर्ववर्ती सांगीतिक नियमों का पालन ही है।

वैदिक ऋचाओं के पाठ से लेकर आधुनिक गीतों तक में संगीत की धारा अव्यक्त रूप से समाहित है; और छन्दों के विविध रूप और प्रयोग काव्य में संगीत के समन्वयन के प्रयत्न है।

आदिकालीन सिद्धों, नादों, जैनों की रचनाओं में संगीत का पुट मिलते है। काव्य-संगीत का प्रारंभिक रूप शास्त्रीयता से काफी निकट थे। किन्तु समय के बीतने के अनुसार उसकी शास्त्रीयता कम होने लगी और शास्त्रीयता को छोड़कर अर्थ या भाव पर आधारित संगीत का प्रयोग होने लगा।

वैदिक साहित्यों में संगीत का सम्मिलन प्रामाणिक है। उसके बाद मध्यकालीन युग में काव्य और संगीत के मणिकांचन संयोग प्रमाणिक रूप से दृष्टव्य है। मध्यकालीन काव्य में संगीत के दो रूप मिलते हैं- निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों की रचनाओं में मिलनेवाला संगीत और सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास जैसे सगुण भक्तों के काव्य में निहित संगीत।

सिद्धों, नादों, सन्तों तथा भक्तों के गीत रागाश्रित है। उनमें संगीत के शास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि कबीर के पदों में इसी परंपरा का अनुसरण हुआ है।

सगुण भक्त कवियों के भक्ति रसपूर्ण पदों का आधार शास्त्रीय संगीत था। काव्य का सबसे निकटतम संबन्ध संगीत से ही है। यह संबन्ध मध्ययुग में जितना घनिष्ठ था उतना कहीं और नहीं। मध्यकालीन कवियों में (सूर जैसे अष्टछाप के कवि,मीराबाई आदि) ने अपने पदों को रागशीर्षक के साथ प्रस्तुत किया है। ये उनके शास्त्रीय संगीत संबन्धी ज्ञान को प्रमाणित करता हैं। आज भी इन रागों को गाये - बजाये जाते हैं, किन्तु आधुनिक संगीत भक्तिकालीन संगीत से बहुत अधिक बदल गया है।

भक्तिकालीन काव्य के यदि आन्तरिक संगीत गौण और बाह्य संगीत प्रधान है तो रीतिकालीन काव्य में आन्तरिक संगीत प्रधान और बाह्य संगीत गौण है। रीतिकाव्य में छन्द तत्त्व ने संगीत को वैभव दिया था।

प्रभाव की तीव्रता और सूक्ष्मता केलिए काव्य में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। छन्दोविधान के परिवर्तन का मुख्य कारण लोकरुचि में संगीत के अभिनव चमत्कार दर्शन की वासना ही है। इसी का स्वतन्त्र किन्तु संयमित रूप स्वच्छन्द छन्दों में मिलते हैं।

अत्याधुनिक कविता ने संगीत से पृथक् होकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण किया है, और अब वह राग-रागिनियों में बाँधकर नहीं रची जाती है। किन्तु अब भी कविता में उस लय का महत्त्व सुरक्षित है जो संगीत का प्रधान तत्त्व है। दूसरे शब्दों में इन काव्यों में संगीत का आभ्यन्तरीकरण हुआ है। अतः अत्याधुनिक कविता संगीत से रहित नहीं है, बल्कि वह प्राचीन काव्य के मुखर और उसकी शास्त्रीयता से दूर है।

भाषा की तोड़-मरोड़ छन्दों के साथ मनमाना व्यवहार, भाषा का गद्यमय बन जाना आदि के कारण छायावदोत्तर काव्यों में संगीतात्मकता का अभाव है। 'काव्य और संगीत का पारस्परिक संबन्ध' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि "कविता में संगीत का समायोग या तो आन्तरिक या फिर आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संगीत के रूप में रहा करता है।"[1]

इस दृष्टि से छायावादी कविता में प्रयुक्त संगीत आन्तरिक और बाह्य दोनों है। पूर्ववर्तियों की तुलना में छायावादी संगीत आन्तरिक अधिक है, बाह्य कम।

इसप्रकार विभिन्न युगों के काव्यों में संगीत के दोनों रूपों - आन्तरिक और बाह्य - का पालन हुआ है।

नाद का परिष्कृत रूप संगीत है। कविता में नाद और संगीत एक हो जाते है, जब साधारण बोलचाल में भी संगीत का आंशिक तत्त्व निहित है तब कविता को संगीतमय विचार कहें तो अत्युक्ति न होगी।

भारतीय आचार्यों द्वारा काव्य को श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत स्थान देना प्रकारान्तर से उसके अंगभूत नादसौंदर्य के अनिवार्य महत्त्व की घोषणा करता है।

---

1. डॉ. उमामिश्र - 'काव्य और संगीत का परस्परिक संबन्ध' - पृ. 22

काव्यभाषा में संगीतमयता के तत्त्व अनिवार्य रूप से विद्यमान हैं, और यह सांगीतिकता कई रूपों में काव्यभाषा में घुलमिल गई है - ध्वन्यात्मक शब्दविन्यास, अनुकरणात्मक शब्दयोजना, अनुप्रासगत वर्णवृत्तियाँ, लय, गति, अर्थध्वननकारी शब्द आदि।

छायवाद के पहले की काव्यभाषा व्रजभाषा थी और उसमें स्वर ध्वनियों की प्रधानता थी। आधुनिक खडीबोली तक आते-आते व्यंजन ध्वनियों का भी अधिक प्रयोग होने लगा। इसी के साथ-साथ संगीत का भी स्वरूप बदला। निरालाजी ने 'अर्चना' की 'स्वीयोक्ति' में व्रजभाषा से तुलना करते हुए खडीबोली की, व्रजभाषा से बदलते हुए नवीन संगीत की चर्चा की है। खड़ीबोली की असंगीतात्मकता वाले आक्षेप को दूर करने का भी प्रयास निराला द्वारा हुआ है। स्वरध्वनि की बहुलता के कारण व्रजभाषा विशेष श्रुतिमधुर है और इसीलिए संगीत की दृष्टि से यह अत्यन्त मधुर भाषा है। निराला जैसे आधुनिक कवियों ने खड़ीबोली को व्रजभाषा के समान श्रुतिमधुर रूप देने का प्रयास किया है।

संगीत को शब्दों से अलग नहीं करते और न कर सकते हैं। यदि स्वर किसी राग के प्राण होते हैं तो शब्द उनका जीवन होते हैं; और उसके सही और मधुर उच्चारण से ही राग के स्वरों की आत्मा जाग उठती है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की मुख्य अलग-अलग शैलियों में भाषा के स्थान का बहुत महत्त्व रहा है। चाहे वह रागों का शास्त्रीय संगीत हो या लोकप्रिय संगीत, दोनों में संगीत और ध्वनि का सुन्दर मिलन और भावुक सहयोग हम पाते है।

हिन्दी की विभिन्न शैलियाँ रही हैं -व्रजभाषा, अवधी, संस्कृत गर्भित हिन्दी, भोजपुरी, अपभ्रंश या हिन्दी की ग्रामीण पदावली। तानसेन के युग (सोलहवीं शताब्दी) से लेकर अब तक हिन्दुस्तानी संगीत की भाषा हिन्दी रही है, हो सकता है उसका प्रकार कोई भी रहा हो।

हिन्दुस्तानी संगीत का विशिष्ट स्वभाव, अथवा चरित्र और उसकी आत्मा सब व्रजभाषा ही में अंकित है। इसकारण से हिन्दुस्तानी संगीत की रचनाओं केलिए इससे ज़्यादा

भावुक और मधुर भाषा व्रजभाषा के अलावा और कोई नहीं हो सकती। व्रजभाषा जनता की भाषा थी और उसमें गाया गया संगीत भी अब लोगों के अधिक निकट आने लगा।

संक्षेप में ध्वनि और संगीत देश, काल, संस्कृति तथा जनमानस की अभिरुचि आदि के अनुसार बदलता है। उपर्युक्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो ही जाता है। परिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करके ही प्रत्येक कला उन्नति करती है।

1.9 छायावादी काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व का वैशिष्ट्य :-

छायावादी काव्य का वैशिष्ट्य मूलतः विशिष्ट पदविन्यास से युक्त संगीतात्मकता अथवा शब्द-संगीत में निहित है। भाषा के दो उपकरण हैं नाद और अर्थ; और काव्य में नाद या संगीत उत्पन्न करने वाले तत्त्व हैं - ध्वनि, लय और गति। इन तीनों तत्त्वों के साधक है शब्द।

ध्वनि के कारण ही कृतियाँ कालजयी बन जाती है। उदाहरण केलिए 'रामायण', 'महाभारत', 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' आदि। विभिन्न कालों में एक ही कृति को अनेक व्याख्याओं और उनसे प्राप्त होनेवाले अनेक मानवीय सत्यों के उद्‌घाटन से यही सत्य प्रामाणित होता है कि कला का सर्वस्व ध्वनि है। 'ध्वनि' से कला और काव्य बहुआयामी बनते हैं; और कृति विशेष से अपने जीवन सन्दर्भ के अनुकूल ध्वनि ग्रहण केलिए प्रेरित करते है।आधुनिक सभ्यता की संक्रान्ति को ध्वनित करनेवाली हमारी काव्यकला इस 'ध्वनितत्त्व' के कारण ही आकर्षक है। इस दृष्टि से छायावादी युगीन रचनाएँ अनुग्रहीत है।

छायावादी कवियों - प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी - ने भाषा को संसार का नादमय चित्र माना था तथा कविता की भाषा के लिए चित्रधर्म और राग को अपरिहार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया था।

काव्यभाषा के रूप में छायावादी युगीन महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है खड़ीबोली हिन्दी का उत्कर्ष। व्रजभाषा से भिन्न होकर खड़ीबोली की स्थापना करने में इनका योगदान उल्लेखनीय है। इस काल के कवियों ने भाषा को अलंकृत कर उसकी आन्तरिक अर्थशक्तियों का संवर्द्धन किया। नाद और अर्थ, इन्हीं भाषावैज्ञानिक तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए छायावादी कवियों ने खड़ीबोली को समृद्धि और सौष्ठव प्रदान करने केलिए उसमें नादसौंदर्य अथवा शब्द-संगीत तथा अर्थगौरव की सृष्टि की। 'संगीत' ध्वनि, लय और गति के आश्रित रहता है और काव्य में संगीत- विधायक इन तीनों तत्त्वों का समावेश केवल शब्दों के ही आश्रय से होता है। अत एव काव्यभाषा में नादसौंदर्य उत्पन्न करने केलिए छायावादी कवियों ने अनुप्रासालंकार, वर्णविन्यसवक्रता, अनुरणनात्मक और अर्थध्वन्यात्मक अथवा सस्वर वर्णमैत्रियों की सज्जा की। इनके द्वारा संगीत की सृष्टि भी उन्होंने की है। इस प्रकार छायावादी काव्यभाषा में शब्द-संगीत की झंकार अभिन्न रूप से गुंथी हुई मिलती है। यह शब्द-संगीत, इस काव्य विशेष की भाषा का सहज, अनिवार्य एवं अन्तरंग तत्त्व है।

छायावादी युग में व्यंजनाशक्ति की अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। वस्तुतः छायावादी कवियों का खड़ीबोली के विकास में सबसे बड़ा योगदान उसे अर्थ-व्यंजना की अद्‌भुत सामर्थ्य प्रदान करना ही है। इस सामर्थ्य की पहचान उनकी गीतमयी लय-योजना और नादमयी अर्थ संवेदना में की जा सकती है। तभी तो कहा गया है कि "गीतात्मकता के कारण नादयोजना, लय संयोजन और संगीतात्मकता की अन्य विशेषताओं के काव्य, छायावादी काव्य ने हिन्दी की खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में न सिर्फ व्रजभाषा के समान प्रतिष्ठित किया बल्कि अनेक रूपों में उससे आगे बढ़कर युगीन भावाभिव्यंजना के सर्वथा योग्य बना दिया।"[1]

छायावादी कविताओं में अलंकारों के भरमार को देखकर उसे रीतिकालीन कविता की कोटि में रखने का प्रयास कुछ विद्वानों द्वारा हुआ है। लेकिन छायावादी कविता और

---

1. डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी एवं डॉ रामदेवशुक्ल (सं) 'छायातप' पृ. 29

रीतियुगीन कविता में काफी अन्तर है। जहाँ रीतिकालीन कविताओं में अलंकारों के चमत्कार के चक्कर में भावनाओं की उपेक्षा क्या, उनकी हत्या तक की गई है, वहाँ छायावादीयुग में ऐसा नहीं हुआ है। छायावादी काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का सामंजस्य हुआ है। जहाँ द्विवेदीयुगीन कवि हिन्दी काव्य के आंशिक रूप से केवल भावमूलक मुक्ति ही प्रदान कर सकते थे, खड़ीबोली काव्य को विषय और छन्द के क्षेत्र में मुक्ति का अन्मुक्त आकाश प्रदान करने का वास्तविक श्रेय छायावादी कवियों को ही है। साथ ही साथ व्यंजित अर्थ पर बल देना उनका साध्य रहा है।

छायावाद के पूर्व के गीतों में शास्त्रीय संगीत का अनिवार्य बन्धन है। छायावादी कविताओं में जो संगीत निहित है वह इससे काफी भिन्न है। फिर भी प्रसाद और निराला ने अपने कुछ गीतों की स्वरलिपियाँ दी है तथा उन्हें शास्त्रीयपद्धति की गोयता या संगीतात्मकता के निकट लाने का प्रयास भी किया है।

साहित्यिक गीतों को संगीत की शास्त्रीयता की कसौटी पर कसना न्याय संगत नहीं है, क्योंकि संगीत में स्वर तथा श्रुति - मूर्च्छनाएँ केवल रागिनी की अभिव्यक्ति केलिए होती है, जबकि साहित्यिक गीतों में विशेष शब्द, अलंकार तथा छन्द मिलकर विशेष भावों को अभिव्यक्त करते हैं। इसप्रकार छायावादी कवियों का संगीत उनका अपना संगीत है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर उपयुक्त शब्द चुनकर उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि उसके गीत से स्वयं ही संगीत फूट पड़ता है। छायावादी कविताओं में जो संगीत निहित है वह जनसाधारण का संगीत है।

संक्षेप में छायावादी कृतियों में श्रेष्ठ रचनाओं की शक्ति तथा प्रभाव का कारण उनकी ध्वननशक्ति एवं संगीतात्मकता ही है। आगे के अध्यायों में इन तत्त्वों की स्थापना, प्रसाद एवं निराला के काव्यों के माध्यम से किया जाएगा।

दूसरा अध्याय

प्रसाद के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण

सारांश

"प्रसाद के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण" शीर्षक यह अध्याय मुख्य रूप से प्रसाद के ध्वनि संबन्धी मान्यताओं और उसके कुशलतापूर्वक प्रयोग पर केन्द्रित है। काव्य में संगीतमय वातावरण जिन ध्वनियों से संभव हो पाता है, मूलतः उन्हीं पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस अध्याय के प्रारंभ में काव्यभाषा के परिवर्तन पर कुछ प्रकाश डाला गया है क्योंकि प्रसाद के काव्य में व्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों मिलते हैं। उनके काव्य में व्यंजनाशक्ति के स्थान को उदाहरण सहित प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि प्रसाद-काव्य की गरिमावृद्धि में शब्दशक्तियों में से व्यंजना का योगदान महत्त्वपूर्ण है। बाद में उनकी ध्वनियोजना कौशल को, संगीतात्मक ध्वनियों, अर्थगत नादसौंदर्य, अर्थध्वननकारी योजना, अनुप्रास विधान, ध्वन्यर्थव्यंजना, शब्द-युग्मों का प्रयोग आदि की दृष्टि से सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह स्थापित किया है कि ये सभी तत्त्व आत्यन्तिक रूप से ध्वनि की महत्ता को ही व्यंजित करते है। इन सभी तत्त्वों के मूल में ध्वनि ही कार्यरत है जिनसे उनकी रचनाओं में संगीतमय वातावरण रूपायित हुआ है।

दूसरा अध्याय
प्रसाद के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण

श्री. जयशंकर प्रसाद छायावादी युग के अप्रतिम काव्य-शिल्पी है। हिन्दी साहित्य में उनका पदार्पण उस समय हुआ था जब काव्यभाषा के रूप में व्रजभाषा प्रतिष्ठित थी। उनकी काव्य रचनाएँ हिन्दी काव्य जगत् की अमूल्य निधियाँ हैं। उनकी रचनाओं को अमरता के पद पर पहुँचाने में उनकी काव्यभाषा का विशेष रूप से ध्वनि का योगदान अक्षुण्ण हैं।

छायावादी काव्यभाषा विशुद्ध साहित्यिक खड़िबोली हिन्दी है। किन्तु इस युग के प्रारंभ में व्रजभाषा और खड़ीबोली के मध्य द्वन्द्व चल रहा था। द्विवेदीयुग तक हिन्दी काव्य क्षेत्र में दोनों भाषाएँ समान रूप से व्यवहत होती थीं, परन्तु छायावादी युग में खड़ीबोली को काव्यभाषा के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने का सशक्त प्रयास हुआ। जयशंकर प्रसाद के अतिरिक्त शेष सभी छायावादी कवियों ने खड़ीबोली में काव्य रचना प्रारंभ की। प्रसादजी ने काव्य रचना का प्रारंभ 'चित्राधार' से किया जो व्रजभाषा में लिखा था। 'प्रेमपथिक' की रचना भी उन्होंने खड़ीबोली से पहले, व्रजभाषा में ही की थी। 'कानन कुसुम' से लेकर 'कामायनी' तक उनकी सारी रचनाएँ खड़ीबोली में है।

प्रत्येक युग नयी परिस्थितियाँ, नयी मान्यताएँ और नए विचार लेकर आता है, जिसके फलस्वरूप नयी काव्य प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जिसके अपने आदर्श, सिद्धान्त और मानदण्ड होते हैं। प्रतिक्रिया और परिवर्तन जगत् का शाश्वत नियम है। भाषा एक

सामाजिक यथार्थ है इसलिए बदलाव की स्थिति आना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से प्रसाद की काव्यभाषा का व्रजभाषा से खड़ीबोली में परिवर्तन सार्थक एवं काव्योचित था।

काव्यभाषा, शब्दार्थ संबन्ध की विशिष्ट निर्मिति है। इन दोनों की सर्वश्रेष्ठ कलात्मक आवृत्ति के रूप में कविता हज़ारों वर्षों से स्मरणीय रही है। भाषा में शब्दों के अर्थों की विशेष भूमिका है। अर्थगौरव की सृष्टि केलिए ही शब्द की विभिन्न शक्तियों का विकास हुआ। भाषा की चरम सिद्धि संप्रेष्य अभीष्ट अर्थ को पूर्णतः अवगत कराने में निहित है। काव्य, शब्द, ध्वनि, अर्थ आदि से संबद्ध प्रसाद के मौलिक विचार उनकी ही कृति 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में मिलते हैं।

काव्य की व्याख्या सौंदर्य के रूप में ही पूर्ण है, और काव्यगत सौंदर्य अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा रसानुभूति के तीन स्तरों से संबन्धित है। साधारण कलाओं में सौंदर्य की व्यंजना में प्रकृति के उपकरणों का सहयोग रहता है। उपकरणों के प्राकृतिक गुण स्वयं भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। किन्तु काव्य में व्यंजना का सबसे अधिक महत्त्व है। अन्य कलाओं में रूपात्मक सौंदर्य का आदर्श रहता है, संगीत में भाव और उपकरणों का समान सौंदर्य है। परन्तु काव्य में अभिव्यक्ति मात्र को ध्वनि के व्यंग्य, निगूढ़ अर्थ, का आश्रय लेना पड़ता है। यह ध्वनि जब सौंदर्य की व्यंजना करती है, तभी काव्य है। इसी भाव को पण्डितराज जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"[1] द्वारा प्रस्तुत किया है। कवि अपनी सौंदर्यानुभूति को आन्तरिक प्रेरणा से व्यक्त करता है। काव्य की अभिव्यक्ति में शब्द, भाव के रूपात्मक प्रतीक हैं। शब्द में अर्थ सन्निहित है, जो भावबिंब ग्रहण करने के पहले ध्वनि-बिंब ग्रहण करता है। काव्य में शब्द के माध्यम से प्रकृति के रूप और भाव का समन्वय, सौंदर्य की अभिव्यक्ति ग्रहण करता है। इस प्रकार ध्वनिकाव्य में प्रकृति व्यंजनात्मक

---

1. पण्डितराज जगन्नाथ - 'रसगंगाधर' पृ. 4

सौंदर्य में आती है। अभिव्यक्ति का सौंदर्य व्यंजना की चमत्कार स्थिति में निहित है। कभी-कभी भावों की व्यंजना प्रकृति के आरोप के सहारे अधिक तीव्र होती है। कभी प्रकृतिवर्णन में व्यंजना से कवि भावों की अभिव्यक्ति प्रकृति में करता है।[1] काव्य का माध्यम शब्द है; शब्द अपनी विभिन्न शक्तियों से काव्य में वर्णित रूप और भाव दोनों की व्यंजना करता है। इसप्रकार काव्य में प्रयुक्त शब्द अपनी ध्वनि के साथ रूप और भावचित्रों की व्यंजना करता है।

1.1 प्रसाद के काव्य में शब्दशक्ति का महत्त्व :-

जयशंकर प्रसाद के काव्य शब्दशक्तियों में से व्यंजनाशक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्य वाङ्मयों-विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन आदि-की भाषा नियत अर्थ के अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ व्यक्त नहीं करती, परन्तु कवि की वाणी जितने अधिक से अधिक अर्थों की व्यंजना करेंगी उतने ही उत्कर्ष को प्राप्त होगी। कविता की भाषा अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक कलामय होती है। इस कलामयता को प्रस्तुत करने केलिए लक्षणा तथा व्यंजना का प्रयोग करना चाहिए।

प्रसाद छायावाद के अप्रतिम कवि है। उन्होंने द्विवेदगीयुगीन काव्यगत अभिधात्मकता को व्यंजनात्मकता प्रदान कर काव्य को नया जीवन प्रदान किया। छायावाद के प्रारंभ के साथ भाषा को नया स्वरूप प्रदान किया गया और स्वाभाविक रूप से उसकी अभिव्यक्ति को भी नया रूप देना वांछित था। इसके संबन्ध में प्रसाद ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में लिखा है कि "हिन्दी में भी नवीन शैली, नया वाक्यविन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा, स्पृहणीय आभ्यन्तर वर्णन केलिए प्रयुक्त होने लगी। ... इस नये प्रकार की अभिव्यक्ति केलिए शब्दों की योजना हुई, हिन्दी में वे पहले कम समझे जाते थे। किन्तु शब्दों

---

1. यह विशेषता प्रसाद और निराला (जुही की कली) की रचनाओं में अपनी चरम सीमा में हैं।

में भिन्न प्रयोग से स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द-विशेष का नवीन-अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का हाथ होता है। अर्थबोध व्यवहार पर निर्भर करता है। शब्द-शास्त्र में पर्यायवाची और अनेकार्थवाची शब्द इसके प्रमाण है। इसी अर्द्ध-चमत्कार का माहात्म्य है कि कवि की वाणी में अभिधा से विलक्षण अर्थ मान्य हुआ।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रसाद ने अभिव्यक्ति के लावण्य केलिए व्यंजना शब्दशक्ति का महत्त्व स्वीकार किया है। ध्वनिकार ने भी इसी विलक्षण अर्थ को प्रधानता दी थी और यही व्यंजना का आधार है। हिन्दी की काव्यभाषा भी व्यंजना को अधिक महत्त्व देती है।

प्रसाद का काव्य ध्वनिकाव्य है। यों तो उनकी प्रारंभिक कविताओं में भी ध्वनि-चमत्कार या व्यंजनाशक्ति देखा जा सकता है, किन्तु उनकी प्रौढ़ कृतियाँ, 'झरना', 'आँसू', 'लहर' तथा 'कामायनी' तो, सर्वांशतः इसी कोटि के अन्तर्गत मान्य है।[1]

प्रसाद ने संसार की स्वार्थ परता और प्रेमियों की भ्रमरवृत्ति को व्यंजना के माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्ति दी है –

"सुमन, तुम कली बने रह जाओ,
ये भौंरे केवल रस-लोभी इन्हें न पास बुलाओ।
मधुर गन्धमय स्वच्छ कुसुम रस क्यों बरबस हो खोते।
कितनों ही को देखा तुम सा, हँसते हैं फिर रोते।"[3]

---

1. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 122*
2. *उक्त काव्यों की निर्माण - काल सीमा में विरचित नाटकों के प्रायः समस्त गीत ध्वनि वैभव से युक्त है।*
3. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' - पृ. 199*

इसमें 'सुमन' का व्यंजनार्थ है प्रणयिनी और 'भौंरे' का, लोभी प्रणयी। इस सुन्दर व्यंजना प्रयोग के माध्यम से प्रसाद ने प्रेम करने वालों को सचेत किया है।

प्रसाद ने अपने अभीष्ट की प्रतीति में व्यंजनाशक्ति का आश्रय लेकर अपने काव्य के गौरव को बढ़ाया है -

"इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती।"[1]

यहाँ कवि ने 'रागिनी' शब्द के माध्यम से अपनी असह्य वेदना को व्यंजित किया है। भावों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को भी उसकी पूर्णता में व्यंजित करने की क्षमता संगीत में होती है। इसके ज्ञाता होने के कारण ही उन्होंने इस सन्दर्भ में 'रागिनी' शब्द का विशेष प्रयोग किया है।

'आँसू' में प्रसाद ने चिरकाल से मूक जिन शिलाओं की श्रेणियों का मार्मिक अंकन किया हैं वे

अतृप्त और अनभिव्यक्त आकांक्षाओं का प्रतीक भी लगता हैं -

"मुँह सिये, झेलती अपनी
अभिशाप ताप ज्वालाएँ
देखी अतीत के युग की
चिर मौन शैल मालाएँ।"[2]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-१) 'आँसू' पृ. 201*
2. *वही - पृ. 228*

इसके अतिरिक्त निर्जन स्थान में अंधकार से जूझकर बुझ जानेवाले एकाकी दीप की व्यथा के द्वारा प्रणय से वंचित प्रेमी के हृदय की वेदना को व्यंजित किया है -

"सूनी कुटिया कोने में,
रजनी भर जलते जाना
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा है फिर बुझ जाना।"[1]

'करुणा की नव अंगराई' और 'मलयानिल की परछाई' जैसी अन्तर्बाह्य सौंदर्य से अभिभूत लहर से कवि का यह कथन "इस सुखे तट पर छिटक लहर"[2], जीवन की नीरसता और दुःख द्वन्द्व को समाप्त कर आह्लाद और आनन्द प्रदान करने की ओर भी संकेत करता है। 'लहर' से कुछ अंश प्रस्तुत हैं जिसमें व्यंजनार्थ बड़ी सरलता से ध्वनित हो उठा है-

"तू भूल न री, पंकज वन में,
जीवन के इस सूनेपन में,
ओ प्यार-पुलक से भरी ढुलक!
आ चूम पुलिन के विरस अधर।"[3]

एक और उदाहरण 'लहर' से हैं जिसमें भी लहरी और जलनिधि में निहित व्यष्टि और समष्टि का व्यंग्य अर्थ, निगूढ़ अर्थ, कवि की प्रस्तुत पदावली के कारण अनायास ही सरस और सहृदय पाठक को ध्वनित हो जाता है–

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-१) 'आँसू' पृ. 229*
2. *वही - 'लहर' पृ. 230*
3. *वही - पृ. 230*

"कितने दिन जीवन जल-निधि में
विकल अनिल से प्रेरित होकर
लहरी, कूल चूमने चल कर
उठती गिरती सी रुक रुक कर
सृजन करेगी छवि गति-विधि में।"[1]

प्रसाद की 'कामायनी' हिन्दी काव्य जगत् केलिए अपूर्व वरदान है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से यह ध्वनिकाव्य ही है। यह शब्दशक्तियों के उदाहरणों का एक बृहद् कोश है। इस काव्यकृति के पात्र ऐतिहासिक वृत्त को व्यक्त करने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों की ओर भी संकेत करते हैं। मनु-श्रद्धा की कथा की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए प्रसाद ने 'कामायनी' के आमुख में इस तथ्य की ओर संकेत किया है - "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा, इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ को भी व्यंजना करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का संबन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग सकता है।"[2]

व्यंजना से 'कामायनी' में अनेक मनोरम भावों की अभिव्यक्ति की गई है। इसके प्रारंभिक छन्द में –

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।"[3]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-१) 'लहर' पृ. 240*
2. *वही - 'कामायनी' पृ. 277*
3. *वही - पृ. 278*

'एक पुरुष' पद का प्रयोग है। यहाँ मनु को एक पुरुष कहा गया है, जबकि वे एक देव थे। इससे व्यंजित किया गया है कि वे भावी मानव के ऊर्जस्वी आदि-पुरुष-पौरुष से युक्त थे। 'भीगे नयनों से' प्रयोग द्वारा दो भाव व्यक्त हो रहे हैं, एक हैं 'आन्दोलित सागर की लहरों से सिक्त' जो वास्तविक अर्थ नहीं है। बल्कि 'देव ध्वंस के कारण उमड़े आँसुओं से भीगे नयन' यही व्यंग्यार्थ है।

और एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"धवल, मनोहर चन्द्रबिंब से अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ,
जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्‌गीथ।"[1]

इस छन्द में कवि ने पवन के पावन उद्‌गीथ द्वारा मनु के पावन आश्रम, यज्ञ, सामगान, मन्त्र आदि की व्यंजना करा दी है जो अत्यन्त मार्मिक है। प्रसादजी ने अपनी संस्कृत मनोवृत्ति के अनुसार जिसप्रकार तत्सम-प्रधान भाषा को माध्यम बनाया, उसीप्रकार संस्कृत कवियों की ध्वन्यात्मक शैली को अपनाकर अपने को भाषा-संबन्धी काव्य के मूल तत्त्व 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' से परिचित भी सिद्ध किया।

'कामायनी' के 'स्वप्न सर्ग' से एक उदाहरण है-

"विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं,
वह जलती छाती न रही अब वैसा शीतल प्यार नहीं।"[2]

यहाँ विरह पीड़ित श्रद्धा सोच रही है अब पूर्व समृतियों के स्मरण से कोई लाभ नहीं, क्योंकि मेरे हृदय में अब न तो कामनाएँ उत्पन्न होती हैं और न उसमें प्रेम केलिए स्थान है। परन्तु

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) - 'कामायनी' पृ. 286*
2. *वही - पृ. 331*

इससे भी अन्य एक और अर्थ की प्रतीति हो रही है कि श्रद्धा का विगत जीवन अतिसुखमय, नूतन कामनाओं को जन्म देनेवाला एवं प्रेम से सरस था। इस अर्थ का द्योतन व्यंजना के द्वारा हो रहा है, जिसका समस्त सौंदर्य 'अब' शब्द में निहित है।

इसप्रकार प्रसाद की संपूर्ण रचनाओं एक-एक शब्द में अनन्त भाव भरा है और उनको सन्दर्भोचित भी प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से प्रसाद-काव्य की गरिमावृद्धि में शब्दशक्तियाँ विशेषकर व्यंजनाशक्ति विशेष सहायक सिद्ध हुई है।

1.2 प्रसाद के काव्य में ध्वनियोजना:-

ध्वनि, चाहे वह भाषावैज्ञानिक हों या काव्यशास्त्रीय, काव्य का सर्वश्रेष्ठ रूप है। कविता चाहें तो अपने अनेक तत्त्वों में से कुछ का त्याग करके भी जीवित रह सकती है किन्तु ध्वनि-जो कवित्व का सर्वश्रेष्ठ गुण है - को त्याग नहीं कर सकती। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है जिसका निर्माण अक्षरों के, जो मूलतः स्वतन्त्र ध्वनि चिह्न है, योग से होता है। वर्णों के विशेष प्रकार से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि श्रोता या पाठक की मनोदशा को विशेष प्रकार से प्रभावित करने में सक्षम होती है। प्रसाद का वर्ण-बोध अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रखर है। उन्होंने प्रसंगानुकूल सुगठित वर्ण-विन्यास द्वारा प्रसंगों को चित्र-सा खींचा है। इसलिए प्रसाद ने काव्य को ऐसा "वर्णमय चित्र कहा है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।"[1]

प्रसाद ने काव्य में ध्वनि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वे शब्द की लघुतम इकाई ध्वनि को मानते थे।

प्रसादजी वर्ण-वर्ण में संगीत को देखते हैं और वे यह भी स्वीकार करते है कि वर्ण में जो ध्वनि है उसके कम्पनों से संगीत का जन्म होता है जो वैज्ञानिक दृष्टि से भी पूर्णतः सही है।

---

1. प्रसाद - 'स्कन्दगुप्त' - पृ. 12

इसप्रकार वर्ण, भाषा की गति की लघुतम इकाई है। इसका महत्त्व संगीत की स्वर मात्रा से कम नहीं इन्हीं वर्णों के संयोग से भाषा का निर्माण होता है, अतः ये भाषा के प्राण है। 'छायावादयुग' नामक ग्रंथ में वर्ण को ध्वनिखण्ड मानते हुए कहा गया है कि "वर्ण एक ऐसा ध्वनिखण्ड है जो मनुष्य की बुद्धि के प्रयत्न से उत्पन्न होता है, वह पशु-पक्षियों के ध्वनिखण्ड की तरह सहजात प्रवृत्ति की देन नहीं है। वह मनुष्य के उच्चारण यन्त्र से उत्पन्न होता है और श्रवणेन्द्रिय द्वारा अनुभूत होता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः उसकी भाषा के ध्वनिखण्ड भी सामाजिक मान्यता पर आधृत है।"[1] इस उद्धरण से ज्ञात हो जाता है कि कविता में सार्थक ध्वनियों का ही प्रयोग होता है और इन सार्थक ध्वनियों की सार्थकता और भी बढ़ती है जब उसका सस्वर पाठ या वाचन होता है। उच्चरित ध्वनि शब्द के अर्थ को और बढ़ा देती है, और वह इसीलिए कि उसमें अन्य तत्त्वों जैसे, सुर, बलाघात आदि का समावेश हो जाता है। यही नहीं ध्वनियों के उच्चारण करने पर ही स्वर और व्यंजनों की शक्ति पृथक्-पृथक् पहचानी जाती है। ध्वनियों के श्रवण में भी आनन्द होता है। कविता में तो इस नादसौंदर्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लेकिन उसके लिखित रूप के मौन पाठ द्वारा इस आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। काव्य को पूर्णतः संप्रेषित करना हो तो उसके नादसौंदर्य की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। नादसौंदर्य की सम्यक् उपलब्धि सुनकर ही हो सकती है, मौन वाचन के द्वारा नहीं। अर्थग्रहण की संभावना काव्य में सस्वर एवं शुद्ध पाठ तथा उसके सम्यक् श्रवण के द्वारा बढ़ जाती है, यह प्रमाणित सत्य है। इसी कारण से प्राचीन भारतीय आचार्यों ने कविता को श्रव्यकाव्य कहा था।

प्रसादजी कहते है कि "जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वाणी उसका रूप है। वाणी का यह विकास वर्णों में पूर्ण होता है।"[2] इसमें 'वाणी' से अर्थ है उच्चरित भाषा। यहाँ भी उन्होंने वर्ण या ध्वनि की सार्थकता पर बल दिया है।

---

1. *शम्भुनाथ सिंह - 'छायावादयुग' - पृ. 295*
2. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 41*

प्रसादजी शब्दों की आत्मा को पहचानने के पश्चात् ही उनका प्रयोग करने के पक्ष में थे। उनके विचार में "शब्द का पूर्ण ज्ञान होने पर ही और उसे उचित सन्दर्भ में प्रयुक्त करने से ही काव्य में अर्थ-सौंदर्य की सृष्टि होगी। अनुभूति और अभिव्यक्ति में आन्तरिक एवं सहज संबन्ध होने पर ही भाषा की स्वाभाविक वक्रता समृद्ध होगी। यदि अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य न हो पाएगा तो कवि की अभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं हो पाएगी तथा शब्दों का चयन ठीक नहीं होगा।"[1] स्पष्ट है कि वे सजग शब्दशिल्पी थे।

प्रसाद ने एक-एक ध्वनि का चयन करके ही शब्दों को प्रस्तुत किया है -

"देख लो, ऊँचे शिखर का व्योम-चुंबन-व्यस्त।[2]

इस उदाहरण में 'व्योम' शब्द में ध्वनि-चयन हुआ है। उसकी 'ओ' ध्वनि 'ऊचाई' को द्योतित करती है। 'आँसू' से एक उदाहरण है-

"धरणी दुःख माँग रही है
आकाश छीनता सुख को।"[3]

इसमें 'आकाश' शब्द से 'विशालता' द्योतित हो रही है।

ध्वनि-चयन का प्रयोग यद्यपि सभी छायावादी कवियों की रचनाओं में उपलब्ध हैं तथापि प्रसाद की रचनाओं में इसका सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। इसप्रकार प्रसाद की प्रायः समस्त रचनाएँ ध्वनि-चमत्कार से संयुक्त है। परंपरागत शब्दों को उन्होंने नवीन अर्थबोध दिया है। अभिव्यक्ति की यह ध्वनिवत्ता प्रसाद के काव्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यों प्रसाद

---

1. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 126*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' - पृ. 300*
3. *वही - 'आँसू' - पृ. 217*

ने ध्वनि के उचित चयन से भाव को प्रतिष्ठित किया है। भाव काव्य का मूल है। इसी कारण से काव्य की ध्वनि, भाषा आदि का भावानुसारिणी होना अत्यन्त आवश्यक है और भाषा को भावानुसारिणी बनाती है भावानुसारिणी ध्वनियोजना।

प्रसाद की भाषा अपनी निजी विशिष्टता रखती है। शब्द सौष्ठव के साथ भाषा में मर्मस्पर्श की क्षमता प्रसाद के काव्य में मिलती है। यह भाषा का अपना सौंदर्य है। इस दृष्टि से 'वसन्त' कविता की कुछ पंक्तियाँ उत्कृष्ट उदाहरण है-

"बस, खुले हृदय से करुण कथा,
बीती बातें कुछ मर्म व्यथा,
वह डाल डाल पर जाता है, फिर ताल-ताल पर गाता है
मलयज मन्थर गति आता है,
तू आता है फिर जाता है।"[1]

मानवीय अनुभूतियों के चित्रण केलिए जिस भाषा का प्रयोग करना होता है उसे ध्वनि संपन्न भी बनाना होगा। इस दृष्टि से प्रसाद 'अर्थगर्भित' भाषा के प्रयोग में सक्रिय दिखाई देते हैं। 'झरना', 'परिचय', 'विषाद', 'किरण' आदि कविताओं में प्रसाद की निपुणता देखी जा सकती है यहाँ भाव और भाषा एक दूसरे के पूरक है, और भावों की मधुरता भाषा को भी माधुर्य प्रदान करती है। भाव चाहे कोमल हो या परुष, उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म छवि और मुद्रा को अभिव्यक्त करने में वे पूर्णतः समर्थ हैं।

'कामायनी' में श्रद्धा के अभौम सौंदर्य से अभिभूत होकर मनु के इस कथन को प्रसाद ने कोमल-कान्त मधुर पदावली से प्रस्तुत किया है-

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' पृ. 168

"वही छवि! हाँ वही जैसे! किन्तु क्या यह भूल?
रही विस्मृति-सिन्धु में स्मृति-नाव विकल अकूल।"[1]

प्रणय और सौंदर्य के इन ललित और मधुर वर्णनों के अतिरिक्त उद्दाम वासना के प्रचण्ड वेग को भी प्रसाद ने परुष ध्वनियों से युक्त शब्दावली के माध्यम से व्यक्त किया है–

"और एक फिर व्याकुल चुम्बन रक्त खौलता जिससे,
शीतल प्राण धधक उठता हैं तृषा-तृप्ति के मिस से।"[2]

इसके अतिरिक्त प्रसाद ने अवसाद, निराशा और व्यथा को भी भावानुकूल प्रस्तुत किया है-

"शैल निर्झर न बना हतभाग्य, गल नहीं सका जो कि हिम-खण्ड,
दौड़ कर मिला न जलनिधि-अंक, आह वैसा ही हूँ पाषंण्ड।"[3]

इसमें मनु ने अपने प्रणय वंचित और विडंबनापूर्ण दुर्भाग्य का अनुभव करते हुए, अपनी दयनीय दशा का उल्लेख किया है। मनु के दुःखपूर्ण हृदय की दशा को प्रस्तुत करने में भाषा भावानुकूल ही है-

"चेतना रंगीन ज्वाला परिधि में सानन्द,
मानती-सी दिव्य-सुख कुछ गा रही है छन्द।
अग्नि-कीट समान जलती है भरी उत्साह,
और जीवित है, न छाले हैं न उसमें दाह।"4

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 302*
2. *वही - पृ. 315*
3. *वही - पृ. 289*
4. *वही - पृ. 301*

स्पष्ट है कि भाव चाहे जो भी हों, उसके अनुसार ही ध्वनियोजना की है और इसी का सफल परिणाम हैं उपर्युक्त सभी उदाहरण।

प्रसाद ने जहाँ मधुर और कोमल भावों की अभिव्यक्ति केलिए श्रुति सुखद ध्वनियों और कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है, वहाँ परुष भावों की समर्थ, प्रवाह एवं ओजमयी अभिव्यंजना में कर्णकटु द्वित्व वर्णों का प्रयोग भी किया है। उत्साह, रौद्र और भयावहता के जीवन्त चित्रण उन्होंने किया है। प्रसाद के 'लहर' के अन्तर्गत 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' में शेर सिंह की तलवार के पराक्रम का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। क्षोभ और गलानि में डूबा हुआ शेर सिंह तलवार को यों संबोधित करता है-

"अरी रण-रंगिनी,
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी!
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान कर।
दुर्मद दुरन्त धर्म दस्युओं की त्रासिनी-
निकल, चली जा तू प्रतारणा के कर से।"[1]

तथा सिक्खों के शौर्य का यह चित्रण भी उनके उत्साह को मूर्तिमान कर देता है:-

"ऊर्जस्वित रक्त और उमंग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अबन्ध बल
इतना भरा था
जो उलटता शतध्वनियों को।"[2]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 255*
2. *वही - पृ. 257*

इस उदाहरण में भी द्वित्व वर्णों की योजना से उत्साह भाव को उसकी संपूर्णता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

प्रलयकालीन भीषण वातावरण को भी उन्होंने प्रस्तुत किया है, जिसकी ध्वनियोजना और शब्दयोजना भाव एवं वातावरण के बिल्कुल अनुरूप है-

"धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वाला-मुखियों के निश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।
सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिन्धु के, विचलित-सी -
व्यस्त महाकच्छप-सी धरणी, ऊभ-चूभ थी विकसित-सी।"[1]

इसमें 'धधकती ज्वाला', 'ज्वालामुखी', 'तरंगाघात', 'महाकच्छप', आदि शब्द और इसमें प्रयुक्त सन्दर्भोचित ध्वनियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भयंकर वातावरण को उत्पन्न करने केलिए सक्षम ध्वनियों का प्रयोग और भी मिलते हैं–

(अ) "हाहाकार हुआ क्रन्दनमय कठिनकुलिश होते थे चूर"[2]

* * * * * * * * * *

(आ) "करका-क्रन्दन करती गिरती और कुचलना था सब का"[3]

उद्धरण (अ) में 'हा-हा' की आवृत्ति में विध्वंसकारी भयंकर ध्वनि की प्रतीति होती है। और (आ) में 'करका-क्रन्दन' की योजना ने वातावरण को कम्पित कर देनेवाली भयानक ध्वनियों को साकार कर दिया है। इस अध्ययन से सिद्ध हो जाता है कि प्रसाद की काव्यभाषा भाव एवं वातावरण के अनुकूल है और इस में ध्वनियों का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 281*
2. *वही - पृ. 281*
3. *वही - पृ. 281*

1.2.1 संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोगः-

प्रसाद ने अपने काव्य में संगीतात्मकता लाने केलिए संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग किया है। यह उनकी ध्वनियोजना की एक विशेषता है। उनकी सभी प्रकार की रचनाओं में इन ध्वनियों का सफल प्रयोग मिलते हैं। भाषा चाहे व्रजभाषा हो या खड़ीबोली, दोनों की रचनाओं में इन ध्वनियों का अपना स्थान है। 'री', 'अरी', 'रे' 'अरे', 'आह रे' आदि संगीतात्मक ध्वनियों के सन्दर्भोचित प्रयोग से काव्य में संगीतात्मकता सहज ही आ गई हैः-

"प्रेम-रंग बोरि हंसि हेरिलै री मेरी लली।
जिय ना जराव जरी जाय रही होरी है।"[1]

* * * * * * * * *

"वाह री! विचित्र मनोवृत्ति मेरी।"[2]

* * * * * * * * *

"उठ-उठ री लघु लघु लोल लहर।"[3]

* * * * * * * * *

"बीती विभावरी जाग री"[4]

* * * * * * * * *

"ओ री मानस की गहराई"[5]

इन उदाहरणों में 'री' ध्वनि का प्रयोग हुआ है जो सुन्दर बन पाई है। कहीं - कहीं 'री' 'अरी' आदि ध्वनियाँ एक साथ आई है तो कहीं अलग-अलग।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 52*
2. *वही - 'लहर' पृ. 265*
3. *वही - पृ. 230*
4. *वही - पृ. 236*
5. *वही - पृ. 250*

"अरी उपेक्षा-भरी अमरते! री अतृप्ति! निर्बाध विलास।"[1]

इसमें 'री' और 'अरी' दोनों एक ही पंक्ति में प्रयुक्त है।

"अरी बरुणा की शान्त कछार।"[2]

* * * * * * *

"अरी रण-रङ्गिनी

.....

अरी वह तेरी रही अन्तिम जलन क्या?"[3]

* * * * * * *

"अरी व्याधि की सूत्र-धारिणी -

.....

अरी विश्व-वन की व्याली"[4]

* * * * * * *

"मृत्यु, अरी चिर-निद्रे! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल"[5]

उपर्युक्त उदाहरणों में 'अरी' संगीतात्मक प्रयोग है। 'कामायनी' में संगीतात्मक ध्वनियों का असंख्य प्रयोग मिलते हैं।

"रे निलज्ज न लाज तोहिं विचारि के यह आज।"[6]

* * * * * * *

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-१) - 'कामायनी' पृ. 280*
2. *वही - 'लहर' पृ. - 232*
3. *वही - 'लहर' पृ. - 255*
4. *वही - 'कामायनी' पृ. - 278*
5. *वही - 'कामायनी' पृ. - 282*
6. *वही - 'चित्राधार' पृ. - 45*

"आह रे, वह अधीर यौवन।!"[1]

* * * * * * * *

"मुझको न मिला रे कभी प्यार"[2]

* * * * * * * *

"अरे नहिं जानत फूल अजान"[3]

* * * * * * * *

"अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को?"[4]

* * * * * * * *

"अरे अमरता के चमकीले पुतलों! तेरे वे जयनाद"[5]

* * * * * * * *

"अरे! प्रकृति के शक्ति-चिह्न ये फिर भी कितने निबल रहे।"[6]

इसप्रकार प्रसाद की रचनाओं में संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। जिससे उसमें संगीतात्मक वातावरण की सृष्टि हो पाई है। इसके फलस्वरूप नादसौंदर्य का सफल निर्वाह हो पाया है।

1.2.2 प्रसाद के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य :-

काव्य में नादसौंदर्य शब्दों की ध्वनि से उत्पन्न होता है। कविता की भाषा में नादसौंदर्य पर भी ध्यान रखना पड़ता है। भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने नादसौंदर्य को

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 237
2. वही 'लहर' पृ. 245
3. वही 'चित्राधार' पृ. 34
4. वही 'लहर' पृ. 247
5. वही 'कामायनी' पृ. 279
6. वही पृ. 283

काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। भारतीय आचार्यों ने काव्य को श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत मानकर उसमें निहित नादसौंदर्य के महत्त्व को व्यंजित किया है। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि "नादसौंदर्य ही कविता की आयु बढ़ाता है।"[1] किन्तु यह नादसौंदर्य मात्र ध्वनि-साम्य के सौंदर्य से काव्य में चमत्कार नहीं ला सकते। अगर ला भी सकते हैं तो भी वह जीवन्त नहीं होंगे। ध्वननकारी सस्वर वर्णों का विन्यास ही नादसौंदर्य है और जब यह अर्थझंकृति से युक्त होते हैं तभी काव्य के वास्तविक सौंदर्य प्रकाश में आयेंगे। रस सिद्ध कवियों के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य स्वतः आ जाता है।

हिन्दी भाषा में नादसौंदर्य के समावेश केलिए अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं की तुलना में बहुत अवकाश रहता है, क्योंकि हिन्दी ध्वन्यात्मक भाषा है। हिन्दी अक्षरों का नाद से अविच्छिन्न संबन्ध है।

"बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही-
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।
.....
तू अब तक सोई है आली।
आँखों में भरे विहाग री।"[2]

यह कविता ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता आदि की दृष्टि से छायावादी कविताओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अर्थगत नादसौंदर्य की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

1. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-'चिन्तामणि'(प्रथम भाग) पृ. 179*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 236*

इसमें आँखों में प्रिय-मिलन का भाव लिए सोई हुई नायिका का चित्रण है। प्रातः काल होने पर नायिका की सखी, नायिका को जगा रही है। पूरी कविता इस प्रकार अनुपम अर्थगत नादसौंदर्य से ओतप्रोत है। अच्छी कविता वह है जो ध्वनि के प्रयोग द्वारा उस स्थिति की व्यंजना करती है जो अगोचर और बुद्धि के पार है। 'लहर' से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

"इस सुखे तट पर छिटक लहर"[1]

* * * * * * *

"लालसा निराशा में ढलमल"[2]

* * * * * * *

"स्निग्ध संकेतों में सुकुमार,
बिछल चल थक जाता तब हार।"[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में प्रयुक्त 'छिटक-लहर' 'बिछल', 'ढलमल' आदि शब्द, ध्वनि-चित्र अलंकार के अन्तर्गत आनेवाले अनुकरणात्मक शब्द न होकर ऐसे शब्द हैं जो अपनी विशेषता के कारण ध्वनिमात्र से ही विशिष्ट अर्थ की व्यंजना कराते हैं। प्रसाद के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य के स्थान को परखने केलिए इतने उदाहरण काफी है। इसप्रकार प्रसाद के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य का महत्त्व निर्विवाद एवं असंदिग्ध है। नादसौंदर्य उत्पन्न करने केलिए अर्थ ध्वननकारी योजना का योगदान विशेष उल्लेखनीय है।

1.2.3 प्रसाद-काव्य में अर्थध्वननकारी योजना :-

अर्थ को स्वयं अपनी ध्वनियोजना द्वारा ध्वनित करने को अर्थध्वननकारी योजना कहते है। हर शब्द के अर्थ होते हैं लेकिन इस योजना केलिए ध्वन्यात्मक शब्दों का ही प्रयोग

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 230*
2. *वही पृ. 242*
3. *वही पृ. 238*

अत्यन्त आवश्यक है। इन शब्दों को अनुरणात्मक संज्ञा दी गई है। इसका सीधा संबन्ध ध्वनियों के गुण से है।

हिन्दी के अनुरणनात्मक शब्दों की संख्या पर्याप्त है। ये हिन्दी के अपने शब्द हैं। इसकी रचना अभाषाशास्त्रीय ध्वनियों से हुई जो विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय अभिव्यक्तियों को प्रकट करने केलिए अर्थवान की गई है। ये वाक्शास्त्र की प्रिय अभिव्यक्ति हैं। मानव ने प्रकृति से ही असंख्य ध्वनियों के आरोह-अवरोह, अनन्त गति तथा चेतना को अपनाया है। इनको वाणीबद्ध कराने केलिए अनुरणनात्मक ध्वनियाँ काफी सक्षम होते हैं।

व्यंजनाशक्ति का एक भेद है संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि[1] जिसे अनुरणन् भी कहते हैं। इसमें व्यंजक और व्यंग्य के क्रम की स्थिति रणन् और अनुरणन् के समान होती है। अर्थात् जैसे घंटा बजने पर मूल शब्द के बाद उसकी सूक्ष्म गूँज सुनायी पड़ती है वैसे ही वाच्यार्थ का बोध हो जाने पर व्यंग्य की प्रतीति होती है। अनुरणन् ध्वनि कहीं शब्द पर आश्रित होती है, कहीं अर्थ पर और कहीं दोनों पर।

प्रसाद के काव्य में स्वाभाविक रूप से अनुरणनात्मक शब्दों का अर्थगर्भित प्रयोग हुआ है। इन शब्दों के पाठ या श्रवण मात्र से तत्संबन्धी वस्तु के विशिष्ट धर्म की प्रतीति हो जाती हैं -

"कल-कल ध्वनि से हैं कहती कुछ विस्मृत बीती बातें ?"[2]

* * * * * * *

"बरसाती नाले उछल - उछल बल खाते।"[3]

* * * * * * *

---

1. *जहाँ पर अभिधा द्वारा वाच्यार्थ का बोध होने पर व्यंजना द्वारा संलक्ष्यक्रम से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है वहाँ संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि होती है।*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'आँसू' - पृ. 201*
3. *वही पृ.121*

"लप-लप करती थी-जीभ जैसे यम की"[1]

* * * * * * *

"निर्झर-सा झिर-झिर करता
माधवी कुंज छाया में"[2]

* * * * * * *

"हँस झिलमिल हो लें तारा गन"[3]

* * * * * * *

"आँसू कन-कन ले छल-छल
सरिता भर रही दृगंचल।[4]

इन में प्रयुक्त 'कल-कल', 'उछल-उछल', 'लप-लप', 'झिर-झिर', झिलमिल, 'कन-कन', 'छल-छल' आदि शब्दों से पाठकों के मानस में उनसे संबन्धित वस्तुओं का क्रियात्मक चित्र कौंध जाता हैं। यही नहीं इन ध्वनिमूलक शब्दों में इतनी शक्ति है कि वे वस्तुओं के रूप-गुण का भी प्रकाशन करते हैं। भाषा में चित्रात्मकता, गत्यात्मकता तथा नादसौंदर्य लाने केलिए इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

कवि विभिन्न प्रकार की ध्वनि से एक अलग ही प्रकार के वातावरण का निर्माण करता है। वे वर्णध्वनि, शब्दध्वनि, तुकांतता, ध्वन्यात्मक व्यंजनों द्वारा एक संश्लिष्ट चित्र-सा उभार देता है। कविवर पन्त ने लिखा है - "कविता केलिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों... जो अपने भाव को ही अपनी ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों।"[5] काव्य में चित्रकला का सन्निवेश इन्हीं ध्वनियों से संभव है। 'आँसू' से एक उदाहरण देखिए-

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' - पृ. 255*
2. *वही 'आँसू' पृ. 205*
3. *वही 'लहर' पृ. 250*
4. *वही पृ. 253*
5. पन्त-'पल्लव' प्रवेश पृ. *31*

"हिलते द्रुमदल कल किसलय,
देती गलबाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती -
मधुपों की तान निराली।"[1]

इन पंक्तियों में पत्तों के हिलने, फूलों का चुम्बन लेते समय भ्रमरों का मधुर गुंजार आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इन को पढ़ते ही यह चित्र पाठकों के मन में उभर आता है।

इसप्रकार प्रसाद के काव्य में अर्थध्वननकारी योजना अपनी सार्थकता को पा ली है। इससे भी कविता में आन्तरिक संगीत संभव हो पाते हैं। यही नहीं वर्णों की आवृत्ति से जो चारुता उत्पन्न हो जाती है उससे कवित्व प्रस्फुटित होता है। इससे कविता में भी जीवन-स्पन्दन होता है और भावों के संप्रेषण संवेग हो पाता है। अतः भावों के उत्कर्ष केलिए काव्य में वर्णों की आवृत्ति का विशिष्ट महत्त्व है। इसी सन्दर्भ में शब्दालंकारों का भी अध्ययन वांछित है। आलंकारिकों ने यद्यपि यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों को महत्त्व दिया है तो भी अनुप्रास ही यहाँ अधिक उपयुक्त है। क्योंकि इसमें वर्णों की आवृत्ति पर बल देते हैं।

1.2.4 प्रसाद-काव्य में अनुप्रास विधान :-

भारतीय महाकवियों के समान प्रसाद के काव्य में भी अनुप्रास का सौंदर्य यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। उनकी अनुप्रास योजना में केवल नाद-संगीत ही नहीं है बल्कि अर्थ-प्रकाशिनी क्षमता की अतिशयता भी है। उनका शब्द भण्डार बड़ा विशाल है तथा शब्दों का मर्म समझकर उनका सार्थक प्रयोग किया है।

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'आँसू' पृ. 208

पहले ही सूचित किया जा चुका है कि प्रसाद की प्रारंभिक रचनाएँ व्रजभाषा में लिखी गई हैं। उनकी व्रजभाषा की रचनाओं में अनुप्रास विधान का सफल प्रस्तुतीकरण हुआ है। व्रजभाषा अपनी अनुप्रासगत व्यंजकमैत्री केलिए प्रख्यात है, 'चित्राधार' की रचनाओं में वर्ण-वैभव की यह अपूर्व छटा पग-पग पर देखी जा सकती है। यथा-

(अ) "नगर नागरी महरानिन के सैन अनोखे"[1]

* * * * * * *

(आ) "केश कदम्बन कलित कुसुम-कलिका बिखरावत"[2]

* * * * * * *

(इ) "मन मुदित मराली जै मनोहारिनी है
मद-कल निज पीके संग जे चारिनी है।"[3]

* * * * * * *

(ई) "नीरव नील नीशीथिनी
नोखी नारि निहारी।"[4]

* * * * * * *

(उ) "माती मधुकर ह्वै मधु-अंध, विवेक न राखैं।
मुरि मुसुक्यान मनोहर कलियन कों अभिलाखैं।।"[5]

* * * * * * *

(ऊ) "चित्त चैन चाहत है, चाह में भरी है चेति
चैत चन्द नेक तो चकोरी को निहरिये।"[6]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 15*
2. *वही पृ. 18*
3. *वही पृ. 6*
4. *वही पृ. 9*
5. *वही पृ. 14*
6. *वही 'काननकुसुम' पृ. 46*

उद्धरण, (अ) में 'न', 'ग' (आ) में 'क', 'ल', और 'त', (इ) में 'म', 'र', 'ह', 'न' और 'ज' (ई) में 'न' और 'र', (उ) में 'म', 'ध', 'व', 'क' और 'ख' तथा (ऊ) में 'च', 'त', 'ह' और 'क' आदि माधुर्य व्यंजक वर्णों की आवृत्ति ने अभिव्यक्ति में संगीतमयी गत्यात्मकता उत्पन्न कर दी है। ये उद्धरण तो प्रसाद के व्रजभाषा काव्य के आनुप्रासिक वर्ण-वैभव की झलक मात्र है। 'चित्राधार' की शायद ही कोई पंक्ति ऐसी हो जहाँ इस प्रकार के श्रुतिमधुर वर्णों की मिठास न हो।

वस्तुतः प्रसाद के व्रजभाषा काव्य में अनुप्रास विधान का समग्र वैभव दृष्टिगोचर होता है। 'चित्राधार' की 'उर्वशी' 'वभ्रुवाहन', 'वनमिलन', 'पराग', एवं 'मकरन्द बिंदु' आदि रचनाओं में जो श्रुतिसुखद भंगिमा है वह प्रसाद के सुन्दर अनुप्रास विधान का ही परिणाम है।

प्रसाद की खड़ीबोली की रचनाएँ भी यत्र-तत्र अनुप्रास युक्त शब्दावली से अलंकृत देख सकते हैं। इसमें व्यंजन वर्णों में समानता होना अनिवार्य है, चाहे उनमें स्वरागत असमानता ही क्यों न हो। किन्तु जब व्यंजन वर्णों में स्वर का भी साम्य हो जाए तो अनुप्रास में और भी चमत्कार आ जाता है। प्रसाद माधुर्य के कवि है। उन्होंने प्रायः ऐसे वर्णों को आवृत्ति की है जो स्वतः कोमल है, जिनकी ध्वनि कर्णप्रिय संगीतात्मक हैं। यथा-

(क) "सुन्दर सुहृदय संपत्ति सुखदा सुन्दरी ले साथ में
संसार यह सब सौंपना है चाहता तव हाथ में।"[1]
* * * * * * * * * *

(ख) "लहराती ललिता लता सुबाल सजीली
लहि संग तरुन के सुन्दर बनी सजीली"[2]
* * * * * * * * * *

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'काननकुसुम' पृ. 118*
2. *वही 'काननकुसुम' पृ. 121*

(ग) "सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे नयन भरे आलस अनुराग,
कल कपोल था जहाँ बिछलता कल्पवृक्ष का पीत पराग।"[1]

इन उद्धरणों में न केवल वर्णमैत्री दृष्टव्य है अपितु अनुप्रास से उद्‌भूत भावसौंदर्य एवं भाषा- सुषमा भी दर्शनीय है। इस प्रकार प्रसाद के काव्य में अनुप्रास-विधान द्वारा अनुपम सौंदर्य का आधान हुआ है और आन्तरिक लय उत्पन्न करने में काफी सहायक भी सिद्ध हुए हैं।

1.2.5. प्रसाद के काव्य में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग :-

ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार वहाँ माना जाता है जहाँ ऐसे ध्वनि चिह्नों का प्रयोग किसी प्राकृतिक ध्वनियों को अभिव्यक्ति देने केलिए किया गया हो। इन शब्दों या व्यंजनों के द्वारा काव्य की अभिव्यक्ति में निखार आ जाता है, और कविता में इन विशिष्ट ध्वनियों से यथार्थ ध्वनिबोध का निर्माण हो पाता है, दूसरे शब्दों में ध्वन्यात्मक बिंब खड़ा कर पाता है।

द्विवेदीकालीन काव्यों तक में मुख्यतया अनुप्रासाश्रित श्रव्य-बिंबों की प्रधानता रही, किन्तु छायावादी काव्य में ध्वन्यर्थव्यंजक श्रव्य-बिंबों का खुलकर प्रयोग हुआ है। छायावादी काव्य की विशेषताओं में एक मुख्य विशेषता यह भी थी। ध्वनि की कल्पना से उद्‌भूत इन श्रव्य-बिंबों में केवल शाब्दिक या ध्वन्यात्मक चमत्कार ही नहीं होता, उनमें अनुभूति सशक्त होती है, और बिना अनुभूति के ऐसे चमत्कार शब्द या ध्वनि के जाल ही समझे जाएँगे। "नाद-कल्पना का अर्थ जानी-पहचानी ध्वनियों की शाब्दिक अनुकृति मात्र नहीं है, श्रेष्ठ ध्वनि-चित्र वहाँ होता है, जहाँ वह काव्यगत अनुभूति की किसी विशेष स्थिति, भावदशा या क्रिया व्यापार की अभिव्यक्ति करता है।"[2] प्रसाद के काव्य में ठीक इसी का पालन करने

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 280*
2. *डॉ केदारनाथ सिंह - 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान' -पृ. 146*

योग्य ध्वन्यात्मक शब्दों का विधान हुआ है। ध्वन्यात्मकता को एक प्रमुख गुण के रूप में प्रसाद ने स्वीकार किया है - "ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ है।"[1] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि ध्वन्यात्मकता एक गुण है जो श्रुति का विषय है। इसी कारण से प्राचीनकाल से ही काव्यों में शब्दों के ध्वनित सौंदर्य को महत्त्व दिया जाता रहा है। यहाँ एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि ऊपर से यह अर्थध्वननकारी योजना लगते हैं। लेकिन अन्तर यह है कि वह ध्वनियों के गुणवत्ता को सूचित करता है और ध्वन्यर्थव्यंजना एक अलंकार है। प्रसाद-काव्य से एक उदाहरण प्रस्तुत हैं -

"धीरे - धीरे लहरों का दल, तट से टकरा होता ओझल,
छप-छप का होता शब्द विरल थर-थर कंप रहती दीप्ति तरल"[2]

इसमें प्रयुक्त 'छप-छप', 'थर-थर' आदि ध्वनियों के माध्यम से पूरे वातावरण का निर्माण किया गया है। यहाँ शब्दों का इसप्रकार संयोजना हुआ है कि उसमें नाद की उत्पत्ति हुई है, साथ ही साथ प्रसंग और अर्थ के उद्‌बोधन से वर्ण्य विषय का चित्र, मानस में उभारने केलिए सक्षम भी हुई है। ऐसे असंख्य उदाहरण प्रसाद के काव्य में बिखरे पड़े हुए हैं, जिनको एक-एक करके प्रस्तुत करना असाध्य है।

इस सन्दर्भ में शब्द-युग्मों या पुनरुक्ति-प्रकाश की योजना पर विचार करना संगत होगा। किसी भी भाषा की और कवि की क्षमता का परिचय उसके शब्दभण्डार से ही ज्ञात होता है। शब्द कविता के गठन में प्रयुक्त होकर ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता की उस भावभूमि पर कविता को ले जाता है, जिसे कविता में संगीत की गेयता का बोध व्यापक रूप से होने लगता है। ऐसे ही शब्द प्रयोग है पुनरुक्तिप्रकाश। एक ही शब्द को दो बार प्रयुक्त

---

1. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 126*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' - पृ. 362*

करके विशेष सौंदर्य उत्पन्न कर सकते हैं। प्रसाद के काव्य में यह योजना नाद-संगीत के साथ साथ साभिप्राय अर्थ-वैभव से युक्त है। तथा-

(च) *"छिल-छिल कर छाले फोडे*
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।"[1]

* * * * * *

(छ) *"राग रंजित थी वह पेया, उसे पीते - पीते रुक गये।"*[2]

* * * * * *

(ज) *"उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती।"*[3]

* * * * * *

(झ) *"आलिंगन में आते-आते मुस्क्या कर जो भाग गया।"*[4]

इन उदाहरणों में 'छिल-छिल', 'मल-मल', 'घुल-घुल', 'पीते-पीते', 'आते-आते' आदि शब्द-युग्मों के प्रयोग हैं।

इस प्रकार नादमूलक वर्णों का अपार वैभव प्रसाद के काव्य में बिखरा पड़ा है। श्रुतिमधुर वर्णों की आवृत्ति के द्वारा उन्होंने भावावेग में नृत्य की-सी गति उत्पन्न कर दी है।

शब्द-युग्मों के प्रयोग केलिए 'आँसू' से उदाहरण है-

"रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी।"[5]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'आँसू' - पृ. 202*
2. *वही 'झरना' पृ. 179*
3. *वही 'लहर' पृ. 230*
4. *वही पृ. 231*
4. *वही 'आँसू' पृ. 204*

कवि की वेदनायुक्त करुण कहानी 'रो-रो' और 'सिसक-सिसक' शब्दों की आवृत्ति से अधिक करुणायुक्त हो उठी है। उसी प्रकार एक और उदाहरण है -

"इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे - आओगे।"[1]

'आओगे' पद की आवृत्ति द्वारा अभिलाषा की उत्कटता की अत्यन्त समर्थ व्यंजना हुई है।

इस प्रकार शब्द-युग्मों के प्रयोग में प्रसाद पूर्ण रूप से सफल बन पाए हैं।

निष्कर्षतः प्रसाद अनुभूतिप्रवण कवि है। उनका काव्य उस गहरी अनुभूति का संधान है जिसके ध्वनित होते ही वीणा के सभी तार झंकृत हो उठते हैं। उनके शब्द केवल नाद ही नहीं जगाते हैं, अपितु वे हमारी चेतना में रंग, प्रकाश और शक्ति को भी आन्दोलित करते हैं। स्पष्ट है कि प्रसाद ने सुकुमार वर्णों के चारुतापूर्ण गुम्फन द्वारा मनोभावों के आरोह - अवरोह की चित्ताकर्षक अभिव्यक्ति की है। उनके वर्ण, ध्वनि एवं नाद का ऐन्द्रिय बोध इतना सजग एवं प्रखर है कि वे सटीक वर्णयोजना द्वारा उनको ध्वनि मात्र से ही प्रतिपाद्य विषय का अभिज्ञान करा देते हैं। और यह वर्णयोजना केवल ध्वन्यात्मक सौंदर्य तक सीमित न होकर अर्थवत्ता को भी पूर्ण रूप से अपना लिया है। इसप्रकार काव्यभाषा, शब्दयोजना, अनुप्रास योजना, अर्थध्वननकारी योजना, ध्वन्यर्थव्यंजना, अर्थगत नादसौंदर्य, शब्द-युग्मों का प्रयोग आदि आत्यन्तिक रूप से ध्वनि की महत्ता को ही व्यंजित करते हैं। यही ध्वनि संगीत के भी आधारभूत तत्त्व है। अतः ध्वनितत्त्व की दृष्टि से प्रसाद के काव्य अत्यन्त सार्थक एवं सफल है और छायावादी युग में अपने महत्त्वपूर्ण स्थान को प्रतिष्ठित भी करते हैं।

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'आँसू' - पृ. 218

तीसरा अध्याय

प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण

सारांश

"प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण" शीर्षक इस अध्याय में भारतीय संस्कृति के अमर गायक प्रसाद के काव्य में संगीत के स्थान को समझाते हुए उनकी संगीत संबन्धी मान्यताओं का विचार-विश्लेषण किया गया है। उनकी संगीत संबन्धी, सूक्ष्मता, अमूर्तता तथा देशकाल एवं भाषा भेद से प्रभावित होने की मान्यताओं को प्रस्तुत करते हुए उनकी व्रजभाषा और खड़ीबोली कविताओं के संगीत को परखा है। उसके बाद संगीत के विभिन्न तत्त्वों - स्वर, राग या रागिनी, तान, मूर्च्छना, मींड़ आदि-के सन्दर्भोचित प्रयोग द्वारा उनके संगीत-ज्ञान को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत को बनाए रखने वाले अन्य तत्त्वों - छन्द, तुक या अंत्यानुप्रास, लय और ताल आदि को भी सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनके वाद्य एवं नृत्य संबन्धी सहज ज्ञान को भी अध्ययन का विषय बनाया गया है। निष्कर्ष रूप में सिद्ध किया है कि प्रसाद के काव्य में ध्वनि के समान संगीत का भी अपूर्व संगम है और उनकी रचनाओं में काव्य और संगीत का सुन्दर समन्वय हुआ है।

तीसरा अध्याय

प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण

साहित्य-संसार में ऐसे रचनाकार विरल हैं जो अपनी सर्जना और प्रतिभा के बल पर विशिष्ट काव्यचेतना का प्रतिनिधित्व कर सके। महाकवि जयशंकर प्रसाद ऐसे ही अप्रतिम शीर्ष रचनाकार हैं। काव्यधारा को युगानुरूप मोड़ देने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जो गुन गुना दिया, वह काव्य बन गया; जो गा दिया वह गीत बन गया।

हर क्षेत्र के कलाकार केलिए सबसे बड़ी चुनौती यही है कि मानवीय अनुभूति और चिन्तन के विविध स्तरों को वह एक साथ पकड़ सके, और साक्षात्कृत कर सके जैसे कि वे एक साथ मानव-जीवन में अवतरित होते हैं। किसी भी तीव्र भावना की संगीतात्मक अभिव्यक्ति गीत है। यह अन्तःप्रेरित अनुभूति होती है। अनुभूति की सघनता सबसे अधिक संगीत में उतरती है जहाँ सात सुरों में अनुभव का पूरा संसार समाया हुआ है। अनुभूति के साथ चिन्तन का भी संक्रमण साहित्य, विशेषः कविता से संभव हो पाता है जहाँ वर्ण और शब्द-संपदा भी अधिक सुलभ है। यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद का कवि हृदय गीतों का मोह नहीं छोड़ सका है। वे काव्य और संगीत के मर्मज्ञ थे।

काव्य और संगीत तो भारतीय जीवन और संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। ये दोनों इसप्रकार अश्लिष्ट हैं कि अर्द्धनारीश्वर के समान अपना अलग-अलग रूप प्रदर्शित करते हुए भी अविच्छेद्य रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारतीय संस्कृति के इन मूलभूत सूत्रों को पर्णतः नष्ट करना किसी केलिए संभव नहीं है। प्रसाद तो भारतीय संस्कृति के अमर गायक हैं।

उनकी रचनाएँ भारतीय संस्कृति के परिचायक बनकर आती है, विधा चाहे कोई भी हो। इस दृष्टि से भी उनकी काव्य रचनाओं में संगीत, संस्कृति की पहचान या संस्कृति का अभिज्ञान बनकर आया है।

"संगीत में प्रसाद की अभिरुचि थी। शास्त्रीय संगीत पसन्द करते थे, पर साथ ही संगीत में व्यर्थ की झाँय-झाँय को वह नापसन्द करते थे।"[1] उनके अनुसार मधुरता, भाव और एक तरह का दर्द, यही संगीत को आकर्षक बनाता है। संगीत से उन्हें बहुत प्रेम था। वे सूर तुलसी, मीरा, तानसेन आदि के समान नहीं थे किन्तु संगीत के रसज्ञ और मर्मज्ञ थे। शास्त्रीय संगीत उन्हें अपेक्षाकृत विशेष पसन्द था। उनका स्वर स्वयं अतीव कोमल और स्निग्ध था। वे सुन्दर ढंग से गाते भी थे। 'जयशंकर प्रसाद' नामक ग्रथ में नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "मैं ने उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा के बड़े समारोह में 'आँसू' की पंक्तियों का सस्वर पाठ करते सुना। .....उन्होंने अपने जीवन में पहली बार जनता के सम्मुख 'नारी और लज्जा' जो 'कामायनी' के 'लज्जासर्ग' से संबद्ध है - सस्वर सुनाया था जिसे सुनकर सारी जनता मन्त्र मुग्ध हो गई थी। प्रसादजी ब्रह्म मुहूर्त में उठकर स्वाध्याय केलिए संस्कृत के श्लोकों का भी सस्वर पाठ किया करते थे।"[2] ये सारे तत्त्व उनकी संगीतप्रियता को सिद्ध करते हैं जिसका एक अलग रूप उनके नाटकों के गीतों में उपलब्ध होता है।

'जयशंकर प्रसाद के काव्य में बिंब विधान' नामक ग्रंथ में लिखा है कि- "बाल्यकाल से ही प्रसाद संगीत की ओर उन्मुख था। कहा जाता है कि उनके घर के सामने उनके पूर्वजों का बनाया हुआ एक शिवमन्दिर था जहाँ प्रायः उत्सव होते रहते थे। घण्टों की सुमधुर ध्वनि और भक्तों के स्तुतिपाठ निरन्तर चलते ही रहते थे। इससे प्रभावित होकर प्रसादजी उसमें रम

---

1. *महावीर अधिकारी - 'प्रसाद जीवन दर्शन : कला और कृतित्व' पृ. 3*
2. *नन्ददुलारे वाजपेयी - 'जयशंकर प्रसाद' - पृ. 25*

जाते थे। घण्टी की मधुर ध्वनि उनकी जिज्ञासा व कुतूहलता का विषय था। भक्ति की तन्मयता में अचानक ही उनके मुख से फूट पड़ा-

"हे शिव धन्य तुम्हारी माया,
जोहि बस भूलि भ्रमत हैं, सब हि सुर अरु असुर निकाया,
भानु भ्रमत उस बहत समीरन, प्रकट जीवन समुदाया,
तब महिमा को पार न पावत हे हि पर करुहु न छाया,
दास दीनता देखि दयानिधि, वेगि करहु अब दाया।"[1]

व्रजभाषा में लिखी गई इन पंक्तियों से उनका कवि व्यक्तित्व एवं संगीतज्ञ रूप प्रकाश में आ जाता है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने अपनी काव्य रचना का प्रारंभ व्रजभाषा से किया था। उनकी उपर्युक्त पंक्तियाँ सूर, तुलसी, मीरा आदि के पदों को याद दिलाने में सक्षम हैं।

1.1 प्रसाद के काव्य में संगीत का स्थान:-

प्रसाद ने अपनी काव्य रचनाओं में मुख्यतः गीत को सर्वाधिक रूप से अपनाया है। उनकी संगीतचेतना का अपना वैशिष्ट्य है। प्रसाद ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष का भी अध्ययन किया था, जिसका प्रमाण निराला की 'गीतिका' में उन्हीं के द्वारा लिखित प्राक्कथन के कुछ संगीतशास्त्रीय शब्दों में मिलता हैं। संगीतशास्त्र के साथ प्रसाद के संगीत परिचय का प्रभाव प्रत्यक्षतः व परोक्षतः इनके काव्य-संगीत पर पड़ा है-

"निराला में केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेटी की-सी एक ही मीठी तान नहीं, अपितु उनकी 'गीतिका' में सब स्वरों का समारोह है। उनकी स्वर-साधना हृदय के ग्रामों

---

1. डॉ. सरोज अग्रवाल - 'जयशंकर प्रसाद के काव्य में बिंबविधान' - पृ. 20

को झंकृत कर सकती है कि नहीं, यह तो कवि के स्वरों के साथ तन्मय होने पर ही जाना जा सकता है।"[1] यद्यपि यह उद्धरण निराला के संगीतज्ञान को लक्ष्य करके लिखा गया है तथापि इस प्रकार की आलोचना प्रस्तुत करनेवाले प्रसाद का वैदग्ध्य भी अधिक प्रशंसनीय है।

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद को भारतीय शास्त्रीय संगीत का अपार ज्ञान था। कविता के अलावा प्रसाद ने नाटकों में जिन गीतों का प्रयोग किया है, उनमें कुछ संगीत चेतना की दृष्टि से बहुत ही समृद्ध है। इनकी स्वरलिपियाँ तोड़ी, भैरवी, कान्हरा, सोहनी आदि तालबद्ध रागों में मिलती हैं, जिससे उनके कवि व्यक्तित्व और संगीत चेतना का परिचय मिलता है। 'झरना' की प्रायः सभी रचनाएँ, 'लहर' की अतुकान्त कविताओं को छोड़कर शेष सभी प्रगीतियों, और 'कामायनी' के 'इड़ा सर्ग' के पद, 'निर्वेद सर्ग' का "तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन"[2] नामक गीत सुगेय होने के कारण संगीतप्रधान श्रेणी में परिगणित किया जाएगा। इसप्रकार उनकी रचनाओं में बाह्य संगीत का पालन हुआ है। किन्तु उनके ये गीत परंपरागत संगीतप्रधान गीतों से भिन्न हैं। उनके साहित्यिक गीतों में भी संगीत की अपूर्व प्रतिष्ठा है। किन्तु ये स्वर की अपेक्षा व्यंजन-प्रधान है अतः इनमें गेयता के साथ पाठ्य गुण भी है। दूसरे शब्दों में इन रचनाओं में आन्तरिक संगीत का अधिक पालन हुआ है।

प्रारंभ में प्रसाद में पद-गीत लिखे हैं, जो 'चित्राधार' में संकलित हैं। इन पर मध्ययुगीन भक्तकवियों की गीत-शैली का प्रभाव है। उनके ये पद भी दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के पदों में अंत्यानुप्रास क्रम आदि से अन्त तक एक समान है द्वितीय प्रकार के पदों में यह परिवर्तित हो गया है। 'कामायनी' के 'इड़ा सर्ग' के गीतों में प्रसाद जी ने पद शैली का प्रयोग किया है। किन्तु इनका पदाविन्यास परंपरा से पृथक् स्वयं प्रसाद की मौलिक कल्पना की देन है। परंपरागत पद शैली सुगेय थी, जबकि इसमें पाठ्यगुण को भी महत्त्व दिया गया है।

---

1. *जयशंकर प्रसाद - 'गीतिका' के प्रक्कथन से।*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 350*

प्रसाद जी ने गीत्यात्मक 'इड़ा सर्ग' की रचना करके इस भ्रम को दूर किया है कि प्रबन्ध काव्य की वर्णनात्मकता और उसका वस्तुविचार गीतिकाव्य के अनुकूल नहीं होता और न ही इसके बीच गीतियों को स्वस्थ वातावरण मिल पाता है। इस अर्थ में उनकी नवीनता प्रशंसनीय एवं अनुभवगम्य है।

'लहर' में संकलित "बीती विभावरी जागरी"[1] की गेयता तो चिर प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त उनके कितने ऐसे गीत हैं जिनका संगीत अत्यन्त ही सुखद हैं। उनकी संगीत चेतना पाश्चात्य संगीत प्रणलियों से प्रभावित नहीं है। इनके काव्य-संगीत में शब्द-संगीत और अर्थ-संगीत के सन्तुलन के साथ लय-प्रसार और राग-विस्तार के भीतर अर्थभूमि की प्रतिष्ठा मिलती है।

प्रसाद के रचनात्मक व्यक्तित्व की एक पहचान है समरसता और रचना-विधान में जिसकी एक महत्त्वपूर्ण परिणति उनकी संगीतप्रियता है। इसप्रकार प्रसाद का संगीत समरसता का संगीत है। जीवन की समरसता का गीत प्रसाद ने गाया है।

समानता की अवधारणा का गीत-संगीत 'कामायनी' में महत् उत्कर्ष पर पहुँच पाया है। उन्होंने इच्छा, ज्ञान, क्रिया इन तीनों के सम्मिलित रूप को ही समरसता की अवस्था कहा है। उन्होंने 'कामायनी' के द्वारा इसी की स्थापना की है। कहा गया है "व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तभी संभव है जब व्यक्ति के भावात्मक, ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक विकास तीनों का परस्पर सन्तुलन हो। संगीत का संबन्ध यद्यपि तीनों से है परन्तु प्रमुख रूप से भावात्मक विकास से है।"[2]

---

1. *प्रसादग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 236*
2. *डॉ. मधुबाला सक्सेना - 'भारतीय संगीत शिक्षा प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर' पृ 40*

'संगीत रत्नाकर' में भी इसी को श्रेय देकर लिखा गया है कि "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति केलिए संगीत ही एकमात्र साधन है।"[1] प्रसाद ने भी इसी बात को अपनाया है। 'कामायनी' में उन्होंने श्रद्धा के माध्यम से संगीत को प्रस्तुत किया है, उसकी वाणी को संगीतमय कहा है -

"कौन गा रहा यह सुन्दर संगीत?
कुतूहल रह न सका फिर मौन।"[2]

भारतीय संगीत में मौन का महत्त्वपूर्ण स्थान है जो हमारे अस्तित्व की प्राथमिक भाषा है। यदि ध्वनि को सही रीति से सुना जाए तो उसके भीतर से उसका मौन स्वतः फूट पड़ेगा। गीत को गाते समय जीवन का महान मौन मुखर हो उठता है। इसी को मनु के प्रश्न के द्वारा किया गया है।

1.2 प्रसाद की संगीत संबन्धी मान्यताएँ :-

प्रसाद ने संगीत के कारणभूत नाद के रूप में अनाहत नाद को स्वीकार किया है जो, "संहार सृजन से युगलपाद-गतिशील अनाहत हुआ नाद।"[3] - वाली पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है। भारतीय काव्य की वरणीय गुणवत्ता में सन्निहित संगीततत्त्व ने सैदव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सामसंगीत की गूँज, छायावादी काव्य के सर्वाधिक समर्थ कवि प्रसाद के कृतित्व में अन्तःसलिला की तरह स्वरित होती रही।

प्रसाद ने कविता को संगीत की तरह गायी जानेवाली कहा है - "कवित्त्व वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। इससे जो आनन्द प्राप्त होती है वह

---

1. *"तस्य गीतस्य माहा त्म्यं के प्रशंसितुमीशते। धर्मार्थकाम मोक्षाणामिदमेवैकसाधनम्" ।।30।। पं. शाङ्गदेव -संगीत रत्नाकर (प्रथम भाग) श्लोक - 30 पृ. 16*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' - पृ. 288*
3. *प्रसाद ग्रंथावली - (खण्ड-1) - 'कामायनी' पृ. 366*

ब्रह्मानन्द सहोदर तुल्य है।"[1] इससे सिद्ध हो जाता है कि उनकेलिए कविता में ललित कलाओं का साम्मिलन मान्य है। यहाँ प्रसाद ने चित्रकला एवं संगीतकला के अन्तःसंबन्ध को भी उद्‌घाटित किया है। कवि की अनुभूति चित्रों द्वारा सहज रूप में व्यंग्य हो जाती है। कविता में योजित चित्र में राग की अतिशयता रहती है। उन्होंने कविता याने शब्द, ध्वनि को चित्र और संगीत से जोड़ा है।

काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर मानने वाले भारतीयों की सभी कलाकृतियों में काव्य का और काव्य में सभी कलाकृतियों का सुन्दर समावेश रहना स्वाभाविक ही है। उन्होंने संगीतकला और कविता दोनों को अमूर्त मानते हुए कहा है - "संगीतकला और कविता अमूर्त कलाएँ हैं। संगीतकला नादात्मक है।"[2]

कलाओं में उन्होंने संगीत को उत्तम माना है और कहा है कि इसमें आनन्दांश व तल्लीनता की मात्रा अधिक है, किन्तु है यह ध्वन्यात्मक। उन्हीं के शब्दों में -"संगीत के द्वारा मनोभावों की अभिव्यक्ति केवल ध्वन्यात्मक होती है। वाणी का संभवतः वह आरंभिक स्वरूप है।"[3] भाषा की उत्पत्ति से संबद्ध संगीतसिद्धान्त"[4] में भी यही बात निहित है।

हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक रूप सिद्धों की रचनाओं में मिलते हैं और प्रसाद ने माना है कि सिद्ध लोगों ने अपनी साधना में संगीत की योजना की है। उनके अनुसार, "सिद्धों ने आनन्द केलिए संगीत को भी अपनी उपासना में मिलाकर जिस भारतीय संगीत में योग दिया है, उसमें भरत मुनि के अनुसार पहले ही से नटराज के संगीतमय नृत्य का मूल था। सिद्धों

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'स्कन्दगुप्त' पृ. 442*
2. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' - पृ. 32*
3. *वही - पृ. 40*
4. *संगीत सिद्धान्त - पहले अध्याय में इसकी ओर संकेत किया है।*

की परंपरा में संभवतः बैजू बावरा आदि संगीत-नायक थे, जिन्होंने अपनी ध्रुपदों में योग का वर्णन किया है।"[1] इस उद्धरण से प्रसाद का संगीत संबन्धी व्यापक दृष्टिकोण प्रकाश में आ जाता है। उनको भारतीय संगीत के मूल से संबद्ध व्यक्त धारणा थी।

गीतकार प्रसाद की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि गीतियों की भाषिक संरचना है। उन्होंने आरंभिक चरण में व्रजभाषा तथा तत्पश्चात् खड़ीबोली को अपनी गीतियों का माध्यम बनाया और इस प्रकार कबीर एवं सूर के पदचिह्नों से यात्रा प्रारंभ करके 'लहर' तथा 'कामायनी' की अत्याधुनिक भावोपन्न गीतियों तक पहुँचे। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपने पूर्व के गीतिकारों के गीति पथ से चलना प्रारंभ करके, अपने बल पर गीति का नवीन महामार्ग प्रशस्त किया।

प्रसाद मानते थे कि संगीत एक सूक्ष्म अमूर्त तथा देशकाल एवं भाषाभेद से प्रभावित कला है। व्रजभाषा से होकर खड़ीबोली को अपनाना इसी मान्यता को सूचित करता है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत केलिए सबसे अधिक उपयुक्त भाषा व्रजभाषा है। इसका कारण यह है कि व्रजभाषा में शब्दों का अर्थ, भाव और कविता के गठन को बिना ठेस पहुँचाए रूपायन आसानी से साध्य है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में संगीतात्मकता सहज रूप में विद्यमान है और एक हद तक व्रजभाषा को इसका श्रेय है। 'चित्राधार' से एक उदाहरण है-

"कल - कण्ठ-ध्वनि सुकोमला
मिलि वीणा-स्वर सों सुहावत है।"[2]

बाद में जब खड़ीबोली को अपनाया तब भी वैसी ही दक्षता बनी रही। 'आँसू', 'लहर', 'झरना', 'कामायनी' जैसे श्रेष्ठ सृजन इतना उत्कृष्ट और मौलिक, अपने आप में

1. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 65*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 8*

विराट भाव एवं अर्थ- तलों का वहन करते हैं कि, उनको एक महान, सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। 'कामायनी' का कृतित्व पूरे आधुनिक काल में अब तक सर्वोपरि ही बना हुआ है। इसप्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में गीत की शुरुआत छायावाद से, प्रसाद से होती है। निराला के अनुसार "खड़ीबोली में नये गीतों के भी प्रथम सृष्टिकर्ता प्रसादजी हैं। उनके नाटकों में अनेक प्रकार के नये गीत हैं। मैंने सन् 1927-28 ई में प्रसादजी का पूरा साहित्य देखा था। उनके अत्यन्त सुन्दर पद का मैं कई उद्धरण दे चुका हूँ।"[1] इस उद्धरण से यह सिद्ध हो जाता है कि खड़ीबोली में नये गीतों को प्रस्तुत करने का श्रेय प्रसाद को ही है। इस दृष्टि से भी प्रसाद छायावादी कवियों में सबसे श्रेष्ठ है। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रसाद की संगीत से संबन्धित अपनी मौलिक मान्यताएँ हैं जो उनको एक सफल संगीतज्ञ एवं गीतकार बनाने में सहायक सिद्ध हुई है। और उनकी ये मान्यताएँ उनको छायावाद में एक अनन्य एवं वरिष्ठ स्थान देते हैं। इस स्थान को प्राप्त करने केलिए संगीतात्मक तत्त्वों योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है।

1.3 प्रसाद-काव्य में संगीत-तत्त्वों का स्वरूप :-

प्रसाद ने अपने काव्य में संगीत को काफी महत्ता दी है। उनकी संगीतप्रियता के कारण ही ऐसा संभव हो पाया है। इस संगीत-प्रियता का अर्थ सिर्फ यही नहीं कि प्रसाद की रचनाओं में संगीतात्मक तत्त्व बहुत गहरा है, वरन् यह भी कि उनके अनेक प्रभावशाली बिंबों का विधान संगीत के विविध तत्त्वों के सहारे हुआ है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के फैलाव के बाद बिंब-विधान प्रसाद के काव्य में उत्सव की तरह छाया हुआ है। इन बिंबों में संगीत की अनेक परिभाषिक शब्दावलियों, 'राग-रागिनियाँ', 'स्वर', 'मूर्च्छना' 'तान', 'मींड' से संगीत के वातावरण में विशेष रूप से जीवन्तता लाई है।

---

1. निराला 'गीतिका' की भूमिका - पृ. 19-20

प्रसाद के काव्य में इन संगीतात्मक शब्दों का प्रयोग कहीं शुद्ध सांगीतिक रूप में हुई है तो कहीं साहित्यिक रूप में। साहित्यिक रूप में ये पूर्ण रूप से काव्य का अंश बनकर आ जाता है, लेकिन तब भी एक संगीतात्मक परिवेश पूरे वातावरण से आच्छादित रहता है। किन्तु सांगीतिक दृष्टि से काव्य में आनेवाले इन तत्त्वों से ही कवि का संगीतज्ञान प्रकाश में आ जाता है। संगीत के ये पारिभाषिक शब्द सांगीतिक नियमों पर आधारित होते हैं और इस दृष्टि से जब शब्दों को प्रस्तुत करना हैं तो उन नियमों का ज्ञान होना ज़रूरी है।

राग या रागिनी:- इसका प्रयोग प्रसाद की रचनाओं में सर्वत्र मिलता है। संगीतात्मक पारिभाषिक शब्द होने के कारण इसकेलिए अलग-अलग नाम है, और अलग-अलग रागों का अलग-अलग प्रयुक्त करने के समय भी निश्चित है। यही नहीं हर एक भाव के अनुसार भी राग बदलते हैं। इस दृष्टि से, अगर किसी विशेष राग को प्रस्तुत करना है तो उसका भाव, समय उस राग की विशेषता आदि का ध्यान रखना ज़रूरी है। इसकेलिए कवि का संगीत-ज्ञानी होना आवश्यक है। प्रसाद ने 'राग' या 'रागिनी' शब्द के प्रयोग में इसका पूरा ध्यान रखा है।

उन्होंने कहीं 'दीपक राग' का प्रयोग गोधूली वेला के संदर्भ में किया है तो कहीं 'पहाड़ी रागिनी' के द्वारा उदासी को प्रकट करने का सार्थक प्रयास किया है। यथा-

"गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दीपती सी।"[1]

इसमें संध्या-समय गानेवाले दीपक राग का ही उल्लेख हुआ है और इस राग केलिए संध्या से उपयुक्त समय अन्य कोई नहीं है। उस सन्दर्भ को और भी जीवन्त बनाने केलिए सक्षम है यह राग प्रयोग। इसीप्रकार उनके द्वारा 'पहाड़ी रागिनी' का सन्दर्भोचित प्रयोग देखिए-

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' - पृ. 303

"शिथिल विपंची मिली विरह संगीत से,
बजने लगी उदास पहाड़ी रागिनी।"[1]

यहाँ 'पहाड़ी रागिनी' के प्रयोग से विरह की उदासी को सशक्त वाणी मिली है। इन उदाहरणों से प्रसाद के राग-रागिनी से संबन्धित शास्त्रीय ज्ञान सिद्ध हो जाता है। इनके अतिरिक्त उन्होंने कई अन्य रागों का भी उचित प्रयोग किया है, जैसे ध्रुपद, भैरवी, भैरव, विहाग आदि उनमें से उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त उदाहरणों में यद्यपि काव्यात्मकता को बिना ठेस पहुँचाये रागों का प्रयोग हुआ है तथापि इसकेलिए संगीत संबन्धी ज्ञान भी अनिवार्य है। इससे भिन्न होकर 'राग' या 'रागिनी' शब्द के साहित्यिक प्रयोग देखिए-

"राग रंजित थी वह पेया,
उसे पीते-पीते रूक गये।"[2]
* * * * *
"रागिनी गावे तुंङ्ग तरङ्ग
लहर सी, हृदय पयोधि यही।"[3]

इन उदाहरणों में मात्र 'राग' या 'रागिनी' शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे यह स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि कौन सा राग है या रागिनी। 'मन को रंजित करने वाले भावों का प्रयोग' इसी अर्थ में यहाँ इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसकेलिए शास्त्रीयज्ञान का होना अनिवार्य नहीं है। फिर भी यहाँ संगीतात्मक वातावरण स्वतः रूपायित हो गया है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' पृ. 181*
2. *वही - पृ. 179*
3. *वही - पृ. 185*

इसीप्रकार अन्य तत्त्वों का प्रयोग भी इसी दृष्टि में हुआ है।

स्वरः- स्पष्ट ध्वनियों के बार बार दुहराने से स्वर की उत्पत्ति होती है। इसका मुख्य गुण माधुर्य एवं रंजनात्मकता है। यह स्वाभाविक रूप से स्वतः श्रोताओं को आकर्षिक करने का श्रेष्ठ गुण रखता है। यहाँ भी 'स्वर' संबन्धी ज्ञान की आवश्यकता है। उदाहरण प्रस्तुत हैं-

"गा रहे श्यामा के स्वर में कुछ रसीले राग से"[1]

* * * * * *

"वीणे! पंचम स्वर में बज कर मधुर मधु
बरसा दे तू स्वयं विश्व में आज तो।"[2]

* * * * * *

"कोकिलों का स्वर विपञ्ची नाद भी...."[3]

तीनों उदाहरणों में 'स्वर' का अलग-अलग प्रयोग मिलते हैं। प्रथम में मात्र 'स्वर' का प्रयोग हुआ है और स्पष्ट नहीं कि कौन-सा स्वर है। यहाँ साहित्यिक रूप से उस शब्द का प्रयोग मिलते हैं। जबकि दूसरे में, 'पंचम स्वर' को विशेष रूप से प्रयुक्त किया है, वह भी वीणा के सन्दर्भ में। इससे प्रसाद के पंचम स्वर की विशेषता संबन्धी ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। तीसरा उदाहरण इससे थोड़ी भिन्नता रखती है कि उसमें यद्यपि पंचमस्वर का उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी 'कोकिलों का स्वर' से पंचम स्वर ही व्यंजित होता है।

मूर्च्छना :- संगीत की एक विशिष्ट लयवाली तान को मूर्च्छना कहते हैं। यही संगीत में राग को मूर्च्छित करने वाला तत्त्व है। क्रमयुक्त होने पर साथ स्वर मूर्च्छना कहलाता है। इस शब्द के भी अलग-अलग प्रयोग प्रसाद-काव्य में मिलते हैं। इसके लिए दो उदाहरण द्रष्टव्य है -

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'काननकुसुम' पृ. 109*
2. *वही 'झरना' पृ. 173*
3. *वही पृ. 183*

"बेसुरा पिक पा नहीं सकता कभी, इस रसीली मूर्च्छना की मत्तता।"[1]

* * * * * * * * *

"जो गूँज उठे फिर नस-नस में, मूर्च्छना समान मचलता-सा
आँखों के साँचे में आकर रमणीय रूप बन ढ़लता सा।"[2]

पहले उद्धरण में 'मूर्च्छना' का प्रयोग शुद्ध शास्त्रीय सन्दर्भ में हुआ है। सप्त स्वरों के आरोह-अवरोह के क्रम को मूर्च्छना कहते हैं और यदि स्वर ही क्रम में नहीं तो मूर्च्छना का पालन कैसे संभव है? दूसरे उद्धरण में काव्यात्मकता से ओतप्रोत होकर मूर्च्छना प्रयुक्त हैं। इसमें लज्जा के समय नेत्र प्रिय की कल्पना से आरक्त हो उठते हैं, शरीर में एक मधुर कम्प अथवा पुलक-सा भर जाता है। लज्जा के इस सौंदर्य को प्रत्यक्ष रूप प्रदान करते हुए उस अवस्था केलिए प्रसाद ने 'मूर्च्छना' शब्द का सुष्ठु प्रयोग किया है। प्रिय की कल्पना में संगीत का माधुर्य भी होता है। इसी मधुर कम्प को उन्होंने मूर्त रूप प्रदान किया है।

तानः- 'तान' शब्द की व्युत्पत्ति 'तन्' धातु मे मानी जाती है, जिसका अर्थ है तानना या खींचना। राग के गायन में उससे विस्तृत करना और उसके वैचित्र्य को अधिकाधिक बढ़ाना ही 'तान' का मुख्य प्रयोजन होता है। काव्य में भी, भाव को उसकी पूर्णता में प्रस्तुत करने केलिए सक्षम है यह शब्द। उदाहरण प्रस्तुत है-

"सम्हलकर, मिलकर बजते साज
मधुर उठती हैं तान असंख।"[3]

* * * * * * * * *

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' पृ. 183*
2. *वही 'कामायनी' पृ. 305*
3. *वही 'झरना' पृ. 188*

"हृदय-वीणा कर रही प्रस्तार अब,
तीव्र पञ्चम तान की उल्लास से।"[1]

प्रथम उद्धरण में, तान रूपी असंख्य भावों के उत्पन्न होने की ओर इशारा हुई है तो दूसरे में, शुद्ध सांगीतिक रूप में। यही नहीं प्रसाद ने 'तान' शब्द के माध्यम से अतीतकालीन मधुर स्मृतियों का द्योतन किया है जिनके स्मरण ने पात्र के अन्दर को झंकृत कर दिया है-

"मौन हुई मूर्च्छित तानें और न सुन पड़ती अब बीन"[2]

मींड:- संगीत के इस पारिभाषिक शब्द में, एक स्वर से दूसरे स्वर तक खण्डित हुए बिना खींचा जाता है, और दो स्वरों को इसप्रकार जोड़ता है कि दोनों स्वर अलग होते हुए भी दोनों की ध्वनियों के अलगाव नहीं रहता। प्रसाद ने इसका प्रयोग कई सन्दर्भों में किया है-

"प्राणों की व्याकुल पुकार पर एक मींड ठहरा आओ "[3]
* * * * * *
"आने दो मीठी मींडों से नूपुर की झंकार रहो।"[4]

प्रथम उदाहरण में मींड शब्द को प्राणों की व्याकुल पुकार से जोड़कर उस व्याकुलता को उसकी पूर्णता में प्रस्तुत किया गया है, जबकि दूसरे में नूपुर की अखण्डित झंकार को मींड़ों द्वारा निरन्तरता प्रदान की है।

'संगीत' शब्द अपने आप में इतना सशक्त है कि उसके प्रयोग से सारे वातावरण मनोहारी बन जाता है और कविता में सहज ही संगीत गूँज उठने लगता है। संगीत में तन्मयता

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' पृ. 183*
2. *वही 'कामायनी' पृ. 280*
3. *वही 'लहर' पृ. 242*
4. *वही 'झरना' पृ. 171*

होती है और उससे उठती लय में मनुष्य आत्मविस्मृत हो जाता है। श्रद्धा के मधुर स्वर मानो संगीत तुल्य थे जिसने मनु को झंकृत कर दिया-

"एक झिटका-सा लगा सहर्ष निरखनेलगे लुटे-से, कौन-
गा रहा यह सुन्दर संगीत? कुतुहल रहन सका फिर मौन।"[1]

संगीत की मधुर ध्वनि मानो आश्वासन-सा देती है-

"विस्मृत तरु शाखाओं के ही बीच में,
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था,
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन - सा देती हुई।"[2]

इन पंक्तियों में विगत स्मृतियों को आश्वासन देता है संगीत। व्याकुल मन केलिए औषधि का काम करता है संगीत। यहाँ 'संगीत' शब्द में पूरा संगीत अन्तर्लीन हो गया है।

इन प्रयोगों के अलावा 'संगीत' शब्द का प्रयोग प्रसाद की रचनाओं में जीवन के शान्तिदूत के समान मिलते है-

"श्रुति सुधा संगीतमय हो शान्ति के सुखसाज"[3]

* * * * * * * * *

"संगीत मनोहर उठता मुरली बजती जीवन की"[4]

इसप्रकार प्रसाद जी की कविताओं में संगीत-तत्त्वों का समायोजन तो हुआ ही है, उनकी गीतियाँ भी सांगीतिकता से समंजित है। ये पारिभाषिक शब्द संगीत के सात स्वरों पर

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 288*
2. *वही 'महाराणा का महत्व' पृ. 92-93*
3. *वही 'चित्राधार' पृ. 55*
4. *वही 'कामायनी' पृ. 378*

आधारित है और उस की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का भिन्न भिन्न प्रयोग है। इसी कारण से सभी तत्त्व एक दूसरे से संबद्ध हैं जिससे संगीत की तरह ही काव्य में भी हारमॉनी आ जाती है।

1.4 प्रसाद के काव्य में छन्दविधान और तुकांतता :-

काव्य और संगीत का संबन्ध आदिकाल से चला आ रहा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि प्रत्येक भाषा का साहित्य प्रारंभ में पद्य में प्राप्त होता है और गद्य में तो बहुत पोछे प्राप्त होता है। संगीतमय कथन का प्रभाव सीधा, शीघ्र और स्थायी पड़ता है, गद्य में कही हुई बात का क्षणिक। अतः सबल भावों की अभिव्यक्ति केलिए संगीत का सहारा लेना पड़ता है; दूसरे शब्दों में छन्दों का आश्रय लेना ही पड़ता है।

छन्द वह रचनाविधान है जो अपने द्वारा कथ्य को, संप्रेष्य को आच्छादित किए हुए है। सफल छन्द वही है जो अपने इस आच्छादन के द्वारा कविता को हर्ष और दीप्ति प्रदान करने में समर्थ हो। आधुनिक कविता के सन्दर्भ में छन्द काव्य-पाठ की गति सूचक तो है ही, विचार, भाव या संवेदना के तदनुकूल वाहक भी है।

काव्य का संगीततत्त्व ही उसे छन्दों में बाँधता है। छन्द पाठ्य होते हैं और गेय भी, यह गेयता उनका श्रृंगार है। दोनों प्रकार के छन्द माधुर्य की अपेक्षा रखते हैं। काव्य में इसप्रकार संगीत तत्त्व का सामावेश उसे मधुर और जन-मन-हारी बनाता है।

सामान्यरूप से प्रत्येक छन्द गेय होता है, क्योंकि उसमें ताल और लय का एक निश्चित नियमन होता है, और ये ही संगीत के प्राण है। 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दयोजना' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि "छन्द स्वयं संगीत की भांति अपने स्वरूप में ही भाव को दीप्त कर सकता है।"[1]

---

1. पुत्तूलाल शुक्ल - 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दयोजना' पृ. 40

वैदिक ऋचाओं के पाठ से लेकर आधुनिक गीतों तक में संगीत की धारा अव्यक्त रूप से समाहित है और छन्दों के विविध रूप और प्रयोग काव्य में संगीत के समन्वयन के प्रयत्न हैं। प्रत्येक छन्द का अपना ताल और लय होता है और इस विशेषता के कारण ही वे एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

हिन्दी छन्दों के वार्णिक, मात्रिक दोनों रूपों में से वार्णिक छन्दों के अतुकान्त रूप तो पहले से मिलते है, किन्तु मात्रिक के अतुकान्त रूप के प्रयोग का श्रेय प्रसाद को हैं। 'प्रेमपथिक'-जो खड़ीबोली में हैं - की रचना एक नवीन छन्द में हैं, जिसमें तीस-तीस मात्राओं की अतुकान्त पंक्तियाँ हैं। यह छन्द पर्याप्त संगीत पूर्ण है। मात्र यही नहीं, उनके अधिकांश छन्द बहुत ही संगीतपूर्ण है। उन्होंने अपने छन्दप्रयोग के भावानुकूलता का सर्वदा ही ध्यान रखा है। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि प्रसाद जी की छन्द रचना में, एक विशेष प्रकार की संगीत में, बिछलन है, और उनके छन्द वीर भावों के साथ अकड़कर चलते, विलास भावनाओं के साथ इंगितपूर्ण नृत्य करते एवं व्यथा और वेदना के साथ कराहते हैं।

प्रारंभ में प्रसादजी ने व्रजभाषा में कविता लिखी। सूर के पदों के समान भी पद रचे एवं 'करुणालय' से उन्होंने अतुकान्त रचनाएँ भी प्रारंभ कर दीं। "प्रसाद ने जिन्होंने अपना अधिकांश काव्य छन्द में लिखा है, स्वयं स्वीकार किया है कि अनुभूति के विन्यास केलिए छन्द अत्यन्त आवश्यक नहीं है।"[1] इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि उन्होंने छन्द को छोड़ दिया। यह सही है कि प्रसाद के काव्य में छन्दविधान पूर्ण शास्त्रीय आधार पर नहीं है और छन्दप्रयोग के अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्राचीन प्रयोगों के साथ नवीनतम छन्दों का निर्माण किया गया है। और संगीतात्मकता लाने का पूरा प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से 'झरना' उनका आरंभिक रचना-प्रयोग है। इस संग्रह की कविता 'झरना' में छः चरण है।

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - 'समकालीन कविता में छन्द' - पृ. 33

प्रथम दो चरणों में सत्रह-सत्रह मात्राएँ हैं; तीसरे में नौ; चौथे तथा पाँचवें में फिर सत्रह मात्राएँ हैं। छठा चरण प्रथम चरण की पुनरावृत्ति है। यथा -

"मधुर है स्रोत मधुर है लहरी
न है उत्पात, छटा है छहरी मनोहर झरना।
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी।"[1]

इसमें, सत्रह मात्राओं के चरणों में आठ और नौ पर यति का नियम-पालन सर्वत्र किया गया है। इस रूप में यहाँ उन्होंने कविता को संगीतात्मकता प्रदान की है। मात्राओं का विधान यहाँ उन्होंने कहीं स्वीकार नहीं किया, और इस दृष्टि से छन्द को नवीनता प्रदान की। इस प्रकार उन्होंने छन्द को नवीनता देते हुए मुक्तछन्द को प्रश्रय दिया। वास्तव में निराला से पहले मुक्तछन्द का प्रयोग प्रसाद की रचनाओं में मिलते हैं। इसके लिए सशक्त उदाहरण है, 'लहर' में संग्रहीत अन्तिम कविताएँ - 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया।'

मुक्तछन्द को, गेय न मानकर अर्थानुसार लय का ध्यान रखते हुए, पाठ्य स्वीकार किया गया है। कविता के प्रवाह के आधार पर मुक्तछन्द की रचना कर इसमें उक्त प्रवाह को भरने का सफल प्रयास होता है। प्रसाद की उपयुक्त रचनाओं में इसका पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। इन रचनाओं में मात्रा या वर्णों का कोई क्रम बन्धन नहीं है। अर्थ के अनुसार लय और लय के अनुसार गति का विधान किया गया है।

---

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'झरना' पृ. 162

यथा-

"ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में -
अब तो न लेश मात्र।
लाल सिंह! जीवित कलुष पंचनद का
देख, दिये देता है
सिंहो का समूह नख दन्त आज अपना।"[1]

इन पंक्तियों को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें युद्ध के सन्दर्भ को प्रस्तुत किया गया है। वीर रस पूर्ण ओज प्रधान इन पंक्तियों में भी लय और उससे उत्पन्न होने वाले ताल से एकप्रकार से संगीतात्मकता का निर्वाह हुआ है। प्रसाद ने मुक्तछन्दों में लय और भावों के उतार-चढ़ाव द्वारा ही पंक्तियों के आकार का निर्माण किया है। एक पंक्ति यदि बहुत छोटी है तो दूसरी उसके अनुपात में बहुत लंबी है। इस दृष्टि से 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' उल्लेखनीय है।

"किन्तु वह ध्वनि कहाँ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की वहीं मेवाड़।
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ?"[2]

* * * * * * * *

"पुण्य ज्योति हीन कलुषित सौंदर्य का-
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा सा

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खड-1) 'लहर' - पृ. 255*
2. *वही पृ. 259*

असफल सृष्टि सांती -
प्रलय की छाया में।"[1]

इन उदाहरणों में भावों के आरोह-अवरोहों का मुक्तछन्द के बाधा रहित विकास हुआ है।

साहित्यिक गीत शब्दों के विशिष्ट प्रयोग एवं सन्दर्भगत अर्थ पर अधिक निर्भर करता है और उसे अर्थ-संगीत से अलग नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से भी 'लहर' में उनको कुछ गीत सृष्टि मिलती है जो उन्हें एक सफल गीतकार का रूप देता है। "बीती विभावरी जागरी"[2], "आह रे वह अधीर यौवन"[3], "तुम्हारी आँखों का बचपन"[4] आदि गीत इसके प्रमाण है।

प्रसाद की व्रजभाषा एवं खड़ीबोली में रची गई कविताओं में अंत्यानुप्रास अथवा तुक मिलते है। यह काव्य में संगीतात्मकता लाने में योग देते हैं साथ ही साथ पद्य को गद्यात्मक होने से बचाता भी है। उनकी रचनाओं में स्वाभाविक ढंग से तुक का विधान हुआ है। तुक और लय ही छन्द के अनुशासक तत्त्व हैं। लय के ही प्रमुख अंग के रूप में तुक आता है और कविता को भावयुक्त एवं गेय बनाता है।

व्रजभाषा में लिखी गई 'चित्राधार' में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे जिनमें तुक का पालन सार्थक हुआ है। उसमें संकलित 'चन्द' शीर्षक कविता से उदाहरण दृष्टव्य है-

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 273*
2. *वही - पृ. 236*
3. *वही - पृ. 237*
4. *वही - पृ. 238*

"निसि फैलि रही निसिनाथ-कला।
किरणावलि कान्ति लसै अमला॥
बिलसै चहुँ ओर लखात भला।
निधि छीर मनो बिहरै कमला॥"[1]

'लहर' में संग्रहीत 'बीती विभावरी जागरी' में तुक मिलाने केलिए जाग के बाद 'री' संगीतात्मक शब्द को प्रस्तुत किया है। इसप्रकार काव्य में संगीत-तत्त्व के निर्वाह केलिए तुक का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

काव्य में शब्द और अर्थ के बाद शोष रह जाता है संगीत। लय, ताल और स्वरों के आरोह-अवरोह से भाव-प्रकाशन, और आह्लादन संगीत का चरम लक्ष्य है। इसी से स्पष्ट है कि काव्य में संगीत के निर्वाह केलिए लय और ताल का कितना महत्त्वपूर्ण योगदान है। लय ओर ताल संपूर्ण सृष्टि में अन्तर्निहित है। काव्य में, संगीत में सहज एवं समान रूप से मिलने वाले तत्त्व हैं लय और ताल। इसीलिए इन दोनों का संगीत के पारिभाषिक शब्द होने के बावजूद भी अलग अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक है।

1.5 प्रसाद - काव्य में लय और ताल :-

प्रसाद के काव्य में संगीततत्त्व को बनाए रखने केलिए लय और ताल का योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'लय' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'ली' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है असंगतियों का लीन होना। असंगतियों तथा अव्यवस्था के विलयन से संगीत-व्यवस्था अर्थात् 'हारमॉनी' का जन्म होता है। "यह संगीत, यद व्यवस्था, यह 'हारमॉनी' ही गीत-सृजन है। युनानी दर्शन में इसे ही 'म्यूज़िक ऑफ स्फेयर' बताया गया है। विज्ञान में इसे

1. प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 30

ही 'अणु-संगीत' अर्थात् 'म्यूज़िक ऑफ एटोम्स' की संज्ञा मिली है। लय के कारण ब्रह्माण्ड एक छन्द, एक महाराग, एक महा गीत है।"[1] इस से लय का महत्त्व और अधिक बढ़ता है।

संगीत और काव्य में लय, उच्चारण से ही अनुभववेद्य बन जाता है। तभी श्रोता भी उसका आस्वादन कर सकता है। यदि कवि की वाणी में शक्ति है, उसकी शब्द साधना अनुभूति जन्य हो तो लयान्विति में एक मधुर संगीत की सृष्टि की जा सकती है। यहाँ 'वाणी' से अर्थ उच्चारण से ही है। अक्षरों के अनुक्रम से उत्पन्न होनेवाली आकांक्षाओं, सन्तुष्टियों, निराशाओं, विस्मयों का संग्रथन लय है। इन विभिन्न भावों को पाठकों तक पहुँचाने केलिए कविताओं का सस्वर पाठ होना आवश्यक है। इसी से मुक्तछन्द में भी संगीत का निर्वाह हो सकता है, जिसके पीछे लय कार्य करता है जो मुक्तछन्द का प्राणतत्त्व है। इसी पाठ की परंपरा के कारण शब्द का अर्थ से भिन्न नादगुण कविता में विकसित हो पाता था। कविता-सृजन के समय पहले के कवि छन्द गुन गुनाते रहते थे। कविता लिखते समय और पढ़ते समय उसका बार-बार सस्वर पाठ ज़रूरी है, जिससे लय का विधान संभव हो पाता है। 'गगनाञ्चल' पत्रिका में कहा गया है कि "रूस में आज भी आम लोग अपने कवियों की कविताएँ पढ़ते और याद रखती हैं। इसका मूल कारण यह है कि वहाँ आज भी कविता का स्वरूप लयात्मक एवं गीतात्मक है।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में लयात्मकता और गीतात्मकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इन्हीं के कारण कविता जनसामान्य तक पहुँचती है और उनकी यादों में जीवित रहती है।

प्रकृति के हर कार्य में लय होता है। इस दृष्टि से मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षियों की बोली, वाद्ययन्त्रों का अनुरणन् तथा वैज्ञानिक उपकरणों की आवाज़ें सभी में कोई न कोई ध्वनि विद्यमान रहती है। इस बात को स्पष्ट करने केलिए यह उद्धरण सक्षम है कि "लय

---

1. *नीरज - 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' - 30 अक्तूबर 1966 (लेख) प्रश्नचिह्नों की भीड में घिरा गीत पृ.18*
2. *देवेन्द्रकुमार - 'गगनाञ्चल' - 'गीत में बचा रहेगा - लोक जीवन' (लेख) - पृ. 70*

मनुष्य द्वारा आविष्कृत न होकर उसके अन्तःकरण से ही इसका प्रस्फुटन होता है... मानव आत्मा में उसेक सदृश ही भावना की लय वर्तमान रहती है।"[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि कला, काव्य और संगीत से ही नहीं, सामान्य जीवन में भी लयत्व की घनिष्ठ व्याप्ति मिलती है। श्वास-प्रश्वास, ऋतु-चक्र, दिन-रात आदि का अनुभव क्रमिक रूप में लयात्मकता के साथ ही होता है। लय और जीवन की यह घनिष्ठता ही कदाचित् कला आदि के क्षेत्र में उसके विशेष आकर्षण का मूल कारण है। संगीत और काव्य में लय कालसापेक्ष रहती है। संगीतज्ञों ने लय का एक शास्त्रीय क्रम निर्धारित किया। लेकिन लय वस्तुतः ध्वनि का क्रम रूप में आवर्तन मात्र नहीं, वह नाद है जो कोमलता के कारण लय कही जाने लगी। काव्य में लय का प्रयोग संगीत के क्षेत्र से हो आया है। संगीतशास्त्र में लय के तीन भेद मिलते हैं - विलंबित,मध्य तथा द्रुत लय।

विलंबित लय :- 'विलंब' शब्द से ही व्यक्त है कि इसमें शब्दों के बीच का अवकाश ज़्यादा होता है। धीरे से गाना, बजाना, नृत्य करना आदि इसी लय में आते है-

"ले चल वहाँ भूलावा देकर मेरे नाविक। धीरे-धीरे"[2]

* * * * * * * * * *

"धीरे - धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से,
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई मुख धोती शीतल जल से।"[3]

मध्यलय :- विलंबित लय से ज़्यादा तीव्र होती है यह लय। मध्यलय प्रायः प्रेम, माधुर्य और श्रृंगार संबन्धी गीतों में पाये जाते हैं -

---

1. *डॉ. जगदीश गुप्त - 'नयी कविता' - अंक-3 पृ. 104*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 233*
3. *वही 'कामायनी' पृ. 283*

"बीती विभावरी जागरी
अम्बर पनघट में डुबो रही-
तारा-घट ऊषा नागरी"[1]

इसमें संगीत का पूरा निर्वाह हुआ है और इसके मूल में लय ही विद्यमान है। प्रियतम के स्वप्न में डूबी हुई प्रियतमा को जगा रही है उसकी सखी। इस सन्दर्भ को उसकी पूरी लयात्मकता और गीतात्मकता के साथ उपर्युक्त कविता में प्रस्तुत किया गया है।

द्रुतलय :- उपर्युक्त दोनों लयों से अधिक तीव्रता इस लय में होती है। सामान्यता वीर रस के समान ओज गुण प्रधान रचनाओं में इस प्रकार के लय प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण दृष्टव्य है -

"अरी रण-रङ्किणी।
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी।
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान कर।"[2]

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो ही जाता है कि प्रसाद के काव्य में भावानुसार विभिन्न लयों का प्रयोग हुआ है।

ताल :- 'तल्' धातु के पश्चात् 'धञ्' प्रत्यय लगने से 'ताल' शब्द बनता है। गीत-वाद्य-नृत्य तीनों ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं। "लघु, गुरु, प्लुत से युक्त सशब्द एवं निःशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करनेवाला काल, ताल कहलाता है।"[3]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' - पृ. 236*
2. *वही पृ. 255*
3. *"गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्। कालो लघ्वादिमिनया क्रियया सम्मितो मितिम्।" 'संगीत रत्नाकर' अडयार संस्करण तालाध्याय पृ. 3-4*

प्रसाद ने काव्य-संगीत के ताल को बहुत प्रधानता दी है। भारत के प्राचीन शास्त्रकारों ने भी ताल को सृष्टिव्यापी महत्त्व दिया था और ताल के बिना समग्र सृष्टि की गति अधूरी है। संगीत के प्रति इससे मिलती-जुलती धारणा प्रसाद की इन पंक्तियों में मिलते हैं- "बिना गान के कोई कार्य नहीं। विश्व के प्रत्येक कम्प में एक तान है।... प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। ... पक्षियों को देखो, उनकी 'चह-चह', 'कल-कल', 'छल-छल' में, काकली में, रागिनी है।"[1] इस उद्धरण से व्यक्त है कि प्रसाद संगीत को कितना महत्त्व देते हैं और उसमें ताल और लय को विशेष स्थान देते हैं।

'कामायनी' के 'दर्शन सर्ग' में स्वर और लय के संयोग से ताल बनने और उसमें संपूर्ण विश्व के लुप्त होने की ओर प्रसाद ने प्रकाश डाला है -

"स्वर लय होकर दे रहे ताल,
थे लुप्त हो रहे दिशाकाल।"2

'संघर्ष' सर्ग से एक उदाहरण है-

"ताल-ताल पर चलो, नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेडो, अनजाने इसमें।"[3]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने जीवन रूपी संगीत के लय को बनाये रखते हुए ताल के अनुसार आगे बढ़ने का सन्देश दिया है। इसप्रकार प्रसाद के काव्य में 'ताल' का संगीतात्मक और काव्यात्मक प्रयोग हुआ है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-2) 'स्कन्दगुप्त' पृ. 462*
2. *वही (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 366*
3. *वहीं पृ. 340*

1.6 प्रसाद के काव्य में वाद्य एवं नृत्य का स्थान :-

प्रसाद को वाद्य एवं नृत्य संबन्धी अच्छा ज्ञान था जो उनकी रचनाओं के द्वारा स्पष्ट हो जाता है। वैसे भी संगीत गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों का साम्मिलित रूप है। इस दृष्टि से देखें तो प्रसाद का काव्य संगीतात्मकता से युक्त है। संगीतात्मक पारिभाषिक शब्दावलियों के समान ही वाद्य एवं नृत्य भी काव्य में संगीत को भर देने में काफ़ी सक्षम है। उनके काव्य में वाद्य एवं नृत्य विभिन्न रूपों में मिलते है; कहीं शुद्ध संगीत के अंग के रूप में हो तो कहीं प्रतीक के रूप में। जो भी हो काव्यात्मकता को बनाए रखते हुए उन्होंने अपने काव्य में वाद्य एवं नृत्य को स्थान दिया है। इससे उनके वाद्य एवं संगीत संबन्धी ज्ञान भी सहज ढंग से प्रकट हो जाता है।

प्रसाद के काव्य में यद्यपि काफी वाद्यों का प्रयोग मिलते है तथापि उनमें से वीणा, मृदंग, बाँसुरी आदि का अधिक प्रयोग हुआ है। उनके व्रजभाषा एवं खड़ीबोली काव्यों में इन वाद्यों का प्रयोग मिलते है। जैसे,

"अति मन्दहि मन्द कान में
मनुवीणा ध्वनिसों सुबाजही।"[1]

* * * * * * * *

"ऊँचे चढ़े हुए वीणा के तार मधुप से गूँज रहे...."[2]

इनमें से प्रथम में, वीणा से प्रस्फुटित मधुर ध्वनि के कान में धीरे से पड़ने का सुन्दर चित्र प्रस्तुत है तो दूसरे में, वीणा के तार बजने को भ्रमर के गुंजार के समान कहा गया है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 7*
2. *वही 'झरना' पृ. 178*

यहाँ संगीत और काव्य एक दूसरे से मिले हुए हैं। मृदंग, वितत वाद्यों में से एक प्रमुख वाद्य है जिसका प्रयोग प्रसाद ने अपनी रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में किए हैं-

"मुद मृदंग मनोज्ञ स्वर से बज रहा है ताल में
कल्पना-वीणा बजी हर एक अपने तार से"[1]

* * * * * * * * * * *

"मधुर मेघ-गर्जन-मृदंङ्ग है बज रहा।"[2]

दोनों उदाहरणों में मृदंग से तालपूर्ण बजनेवाले स्वर की सुन्दरता को प्रस्तुत किया गया है। फिर भी दोनों में थोड़ा सा अन्तर है। पहले में संगीत की प्रधानता तो है ही किन्तु काव्यात्मकता भी कुछ कम नहीं है। जबकि दूसरे में मेघ गर्जन को मृदंग के समान मधुर एवं संगीतात्मक कहा गया है। इसीलिए यहाँ मृदंग उपमान के रूप के प्रयुक्त हुआ है।

सुषिर वाद्यों में से बाँसुरी का ही अधिक प्रयोग प्रसाद की रचनाओं में कई नामों से हुआ है -

"बाँसुरी की एक ही बस फूँक तो पर्याप्त थी।"[3]

* * * * * * * * * *

"वंशी की स्वरलहरी नीरव व्योम में"[4]

* * * * * * * * * *

"शुद्ध सम्मोहन बजा या वेणु से व्रजभूमि में
नीर धर सी धीर ध्वनि का शंख अब रणभूमि में।"[5]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'काननकुसुम' पृ. 142*
2. *वही पृ. 159*
3. *वही पृ. 152*
4. *वही 'झरना' पृ. 182*
5. *वही 'काननकुसुम' पृ. 154*

तीनों उदाहरणों में बाँसुरी, वंशी, वेणु शब्दों का प्रयोग हुआ है जो पर्यायवाची हैं। 'वेणु' और 'शंख' के माध्यम से दो भिन्न वातावरण को प्रस्तुत किया गया है। वेणु वादन से सारी व्रजभूमि को सम्मोहित करनेवाले कृष्ण ने ही युद्ध की शुरुआत पाञ्चजन्य फूँककर किया था।

प्रसाद को नृत्य संबन्धी ज्ञान था और उन्हीं के शब्दों में - "गान, वाद्य तालानुसार भौंह, हाथ, पैर और कमर का कम्पन नृत्य में होता था। ताण्डव और लास्य नाम के इसके दो भेद और हैं। कुछ लोग समझते हैं कि ताण्डव, पुरुषोचित और उद्धत नृत्य को ही कहते हैं, किन्तु यह बात नहीं, इसमें विषय की विचित्रता है। ताण्डव नृत्य प्रायः देव-संबन्ध में होता था। और लास्य अपने विषय के अनुसार लौकिक तथा सुकुमार होता था।"[1]

'कामायनी' के 'दर्शन सर्ग' में साक्षात् नटराज के नृत्य करते हुए चित्र को प्रस्तुत किया गया है-

"अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य-भेदिनी-सत्ता चित्,
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित"[2]

और एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"शक्ति-तरंगों में आन्दोलन, रुद्ध-क्रोध भीषणतम था,
महानील-लोहित-ज्वाला का नृत्य सभी सं उधर परे।"[3]

---

1. *प्रसाद - 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' पृ. 90*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' - पृ 366*
3. *वही पृ. 336*

प्रसाद ने नृत्य को और अधिक मार्मिक बनाने केलिए नूपुरों की झंकार को भी प्रयोग में लाया है-

"मणिनूपुरों की बीन बजी, झनकार से,
गूँज उठी रंगशाला इस सौंदर्य की
.....
नूपुरों की झनकार घुली मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से।"[1]

यहाँ नृत्य में नूपुरों की ध्वनि के साथ लय भी उत्पन्न हो रही है। प्रसाद लय-ध्वनि नृत्य के प्रेमी हैं। प्रसाद ने नाद, राग, नृत्य और वाद्यों के मिलन से संगीत की सृष्टि पर बल दिया है - "रुद्र का श्रृंगी नाद, भैरवी का ताण्डव-नृत्य और शस्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव-संगीत की सृष्टि होती है।"[2]

संगीत की पारिभाषिक शब्दावलियों, तथा वाद्य एवं नृत्य संबन्धी इस विश्लेषण से सिद्ध हो जाता है कि उन्होंने काव्य और संगीत को सम-स्थिति में लाया है।

निष्कर्ष के रूप में प्रसाद मूलतः प्रगीतकार हैं। प्रगीतों में जो संगीत है वह अनिवार्य रूप से शास्त्रीय एवं परंपरायुक्त संगीत ही हो यह ज़रूरी नहीं है। फिर भी शास्त्रीय एवं परंपरायुक्त संगीत में ढाला जा सकता है। प्रसाद के काव्य में शब्द और स्वर अर्थात् काव्य और संगीत का सुन्दर समन्वय हुआ है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 271-260*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-2) 'स्कन्दगुप्त' पृ. 457*

चौथा अध्याय

निराला के काव्य में ध्वनितत्व का विश्लेषण

सारांश

"निराला के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण" शीर्षक इस अध्याय में, प्रमुख रूप से निराला का शब्दशक्ति, विशेषकर ध्वनियों पर जो असाधारण अधिकार है उसपर प्रकाश डाला गया है। उक्त दृष्टि से असंख्य ग्रंथ उपलब्ध हैं जिसमें भाषावैज्ञानिक तथा काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ध्वनि संबन्धी विस्तृत अध्ययन प्राप्त हैं। उससे हटकर ध्वनि और संगीत की समस्थिति को लाने में जिन ध्वनियों की प्रमुखता है, मुख्य रूप से उनपर केन्द्रित है प्रस्तुत अध्ययन। इसमें उनके काव्य में व्यंजनाशक्ति के स्वरूप को सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से निराला के काव्य ध्वनिकाव्य की कोटि में आते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी ध्वनियोजना नैपुण्य को स्वर-व्यंजन ध्वनियों के चयन, संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग, अर्थगत नादसौंदर्य, अर्थध्वननकारी योजना (ध्वन्यात्मकता), शब्दलंकार - अनुप्रास योजना तथा ध्वन्यर्थव्यजना का प्रयोग आदि को प्रमाणसहित प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह अध्ययन ध्वनि, शब्द और उससे उत्पन्न होनेवाले अर्थ पर केंद्रित है। इस ध्वनि योजना से ही उनकी काव्य रचनाओं में संगीत को जीवन्त रूप मिला है।

चौथा अध्याय

निराला के काव्य में ध्वनितत्त्व का विश्लेषण

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के संपूर्ण काव्य विलक्षण ध्वनिसौंदर्य से अनुप्राणित है। ध्वनियों पर उनका असाधारण अधिकार है। उन्होंने जब जैसा चाहा है, अपनी काव्य-संरचना में ध्वनियों का सहारा लिया है।

कविता शब्दों से निर्मित होती है। शब्दों का महत्व काव्य की अभिव्जंयना-शक्ति और कवि के व्यक्तित्व पर आधारित है। शब्दों की ध्वनि और अर्थ, काव्य का सृजन करते हैं और ध्वनि ऐसी होनी चाहिए जो आन्तरिक भावना की प्रतिध्वनि जान पड़े। भाषा की ध्वनिविशेषता प्रत्येक श्रेष्ठ कवि का ध्यान आकर्षित करती है। शब्दों की यह ध्वनि तथा लय भी अनुभूति का अंग है और उसका अनिवार्य महत्त्व स्वीकार किया गया है। शब्द उनकी ध्वनि और यहाँ तक कि उनका बाह्य परिवेश वस्तुतः कवि केलिए काफी महत्त्वपूर्ण है। शब्दों का निराला केलिए उतना ही महत्त्व है जितना भावना, अनुभूति या कल्पना अथवा प्रेरणा का। शब्द ही काव्य में व्यक्त क्रिया का निर्देश करते है। निराला का कथन है कि "एक ही शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं। उनमें किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द से कविता में भाव की व्यंजना अधिक होगी इसका ध्यान कवियों को रखना पड़ता हैं - भाव के वाहक शब्द होते हैं और शब्दों में अर्थ और ध्वनि।"[1] इस उद्धरण में निराला ने शब्द की महत्ता पर बल दिया है। उनके अनुसार उचित स्थान पर उचित शब्द को वांछित ढंग

---

1. निराला - 'रवीन्द्र-कविता-कानन' पृ. 118

से रख देने से ही श्रेष्ठ काव्य रचा जा सकता है। यही नहीं उन्होंने व्यंजना से युक्त कविता को प्रश्रय दिया है। कवि की सच्ची अनुभूति को ठीक तरह से अभिव्यक्त करनेवाले शब्द का ही प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि पूरी कविता का अर्थ उसी पर आधृत है, और शब्द में जो ध्वनि है उसी से अर्थ जन्म लेता है।

निराला शब्दों के असाधारण शिल्पी थे। उनके शब्द, सार्थकता, नादात्मक-व्यजंना और ध्वन्यात्मकता के सौंदर्य से मण्डित है। उनका एक-एक शब्द गहरी अनुभूति में निमग्न है। समानार्थक या मिलते - जुलते अर्थवाले शब्दों के अक्षरों का नादात्मक प्रभाव अलग-अलग होता है। अतः सचेत कवि उन्हीं शब्दों को चुनते हैं जिनसे उनके मनोवेग को अभिव्यक्त करने में नादात्मक सहयोग प्राप्त हो। निराला भी ऐसे ही महान कवि रहे हैं।

वस्तुतः वर्ण चमत्कार भी यही है कि एक शब्द में ध्वनिमय चमत्कार बँध जाता है। निराला के अनुसार ध्वन्यात्मक सौंदर्य ही वर्णयोजना में चमत्कार लाते हैं-

"वर्ण चमत्कार।
एक-एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार।
पद-पद चल वही भावधारा,
निर्मल कल-कल में बंध गया विश्व सारा।
खुली मुक्तिबन्धन से बँधी फिर अपार
वर्ण चमत्कार।"[1]

इन पंक्तियों में वर्ण से लेकर कविता बनने तक की प्रक्रिया का सूक्ष्म अंकन व्यंजनाशक्ति द्वारा किया गया है, साथ में भाषा के मूर्त रूप को निराला ने महत्त्व दिया है और

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 261

यह, दूसरी पंक्ति 'एक-एक बँधा ध्वनिमय साकार' में दृष्टव्य है। स्पष्ट है कि एक-एक शब्द के सम्यक् प्रयोग द्वारा काव्य में ध्वनि एवं आकार उत्पन्न किया जाता है।

निराला की दृष्टि में काव्य में भाषा का विशेष स्थान है। काव्य जगत् में उनका पदार्पण उस समय हुआ था जब काव्यभाषा व्रजभाषा से खड़ीबोली में परिवर्तित हो रही थी। व्रजभाषा का काव्यभाषा के रूप में बोलबाला होते हुए भी निराला ने खड़ीबोली को ही मानक भाषा के रूप में स्वीकार किया और उसको यथार्थ में मानक रूप देने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनकी भाषा सर्जनात्मक और ध्वन्यात्मक है। उनके नादसौंदर्य और शब्द झंकार प्रयासकृत न होकर अचेतन मानस की रचनात्मक सृष्टि है। शब्दों के इस महान निर्माता एवं पारखी ने स्वीकार किया है कि "मैं ने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से मुखर करने की भी कोशिश की है।"[1] उन्होंने काव्य के अनुरूप अपनी शब्दावली को प्रस्तुत किया है। कह सकते है कि उचित शब्दों द्वारा उन्होंने काव्यात्मक वातावरण की सृष्टि की है। निराला शब्दों के वैयक्तिक प्रयोग और उनके भाव-वहन की क्षमता का आग्रह करते हुए कविता में शब्दों की महत्ता को स्वीकार करते है। विशेष भावों की अभिव्यक्ति केलिए उनको वे सहस्रों शब्द गड़ने पड़े जो संगीत, ताल एवं लय के साथ खड़ीबोली में जीवन्त हो सके।

भावानुसारिणी भाषा का प्रयोग निराला काव्य की विशेषता है। भाव के साथ परिवेश को भी भाषा की सहज ध्वन्यात्मकता से प्रस्तुत करने का प्रयास उनकी रचनाओं में मिलती है। कोमल और परुष भावों की अभिव्यक्ति भी तदनुकूल शब्दावली के द्वारा ही हुई है।

'दिल्ली' शीर्षक कविता में प्रणय दृश्य के रमणीय अंकन में श्रुति सुखद शब्दावली का प्रयोग किया है-

---

1. निराला - 'गीतिका' की भूमिका पृ. 12

"क्या वही देश है
संध्या की स्वर्ण वर्ण किरणों में
दिग्वधु अलस हाथों से
थी भरतीं जहाँ प्रेम की मदिरा
पीती थी वे नारियाँ
बैठी झरोखों में उन्नत प्रसार के।"[1]

'राम की शक्तिपूजा', 'बादल राग' आदि में परुषध्वनियों के प्रयोग से उचित वातावरणों की सृष्टि की है।

'राम की शक्तिपूजा' में युद्ध-विभीषिका को द्वित्ववर्णों के प्रखर प्रवाह, परुष ध्वनियों की ओजमयता एवं कर्णकटु ध्वनियों के प्रयोग से साकार किया है। राम और रावण के युद्ध की प्रचण्डता का पूरा अनुभव पाठकों को प्रस्तुत पंक्तियों से हो जाता है-

"शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,-क्रुद्ध-कपि विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन - हत-लक्ष्य-बाण।
.....
उद्धत-लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दव्य-शर-भंग-भाव,
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव"[2]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 88*
2. *वही पृ. 310*

'बादल राग' से एक उदाहरण है-

"अशनिपात से शापित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर,
गगन स्पर्शी स्पर्द्धा-धीर।"[1]

पौरुष के प्रतीक बादल की प्रचण्ड क्षमता का उद्‌घाटन इस बिंब द्वारा हुआ है। बादलों का वज्र-सदृश गर्जन एवं अनवरत वर्षण संसार की सहन-शक्ति के बाहर है, और इस सच्चाई को इन पंक्तियों द्वारा वाणी मिली है।

1.1 निराला के काव्य में शब्दशक्ति का महत्त्व :-

भाषा का प्राण है अर्थवत्ता और अभिव्यक्ति क्षमता का मूल है शब्दशक्ति। निराला को शब्दशक्तियों का अच्छा ज्ञान था, अतएव इसके आधार पर उनकी रचनाओं का विचार किया जा सकता है। शब्द औरअर्थ की संहिति से भाषा का निर्माण होता है और शब्दशक्तियों के माध्यम से शब्द और अर्थ के ही अन्तरंग संबन्धों और भाषा की अर्थगत उच्चतर संभावनाओं का अध्ययन किया गया है। वे शब्दगांभीर्य के साथ भावगांभीर्य भी चाहते थे। उनके शब्द अभिधा से होकर व्यंजनाशक्ति तक पहुँच जाता है। इसका प्रभावशाली प्रयोग निराला के काव्य में पाया जा सकता है।

निराला इस बात को जानते थे कि समृद्ध भावलोक के प्रकाशन केलिए भाषा का अत्यधिक समृद्ध होना आवश्यक है। वे यह भी जानते थे कि भाषा की समृद्धि केलिए उसमें व्यंजनात्मकता की आवश्यकता है। निराला ने भाषा को ऐसी व्यंजनाशक्ति प्रदान की कि वह उसकी अपार भावराशि का भार वहन करने योग्य बन सकी। किसी भाषा की श्रेष्ठता का

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 123

मानदण्ड केवल यह है कि उस भाषा में हम सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त कर सकें। निराला की अधिकांश रचनाएँ सूक्ष्म एवं सशक्त व्यंजना से युक्त है। वे एक ही कविता के माध्यम से दो-दो, तीन-तीन अन्य भाव भी व्यक्त करते थे। ऐसी कविताओं में प्रतीक शैली के मनोहर प्रयोग हुए हैं। इसकेलिए उपयुक्त एवं सार्थक उदाहरण है 'जुही की कली' नामक कविता। इसमें तीनों शब्दशक्तियों का एक साथ समावेश करके प्रस्तुत किया है, साथ में प्रतीकयोजना का सुन्दर निर्वाह भी हुआ है-

"विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी स्नेह - स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,

विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।"[1]

इसमें 'जुही की कली' प्रतीक है नव-विवाहिता युवती का और 'मलयानिल' पति का। दोनों का मानवीकरण इसमें किया गया है। इसमें वाच्यार्थ यह है कि दोनों प्राकृतिक तत्त्व है। लक्षणा की दृष्टि से नवविवाहिता युवती और पति है। व्यंजनार्थ इन दोनों अर्थों से काफी भिन्न एवं विशिष्ट है कि जुही की कली आत्मा है और मलयानिल परमात्मा। सुषुप्ति से जागी हुई आत्मा का परमात्मा से मिलन ही प्रस्तुत कविता का विषय है, और इसी को व्यंजना द्वारा प्रस्तुत किया गया है। एक और गीत है 'रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी'

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 31

जो इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है। इसमें वसन्तागमन के बाद प्रकृति के परिवर्तन के चित्र के साथ पार्वतीतप और शिव-प्राप्ति का चित्र है, तो निराशा के परिहार का ध्वन्यर्थ भी व्यंजित है।

'वर दे वीणावादिनी वरदे' गीत में "कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे"[1] में तमसोमा ज्योतिर्गमय की ध्वनि व्यक्त होती है।

'परिमल' काव्य संग्रह में संकलित 'बादल राग' में व्यंजना शक्ति का सफल प्रयोग किया गया है-

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर,
राग अमर अम्बर में भर निज रोर,
झर-झर-झर निर्झर-गिरि सर में
घर, मरु, तरु, मर्मर, सागर में।"[2]

इसमें 'झूम-झूम' शब्द से वर्षाकालीन काले मेघों का आकाश में मन्दगति से सरकने की गति का बोध होता है और 'गरज-गरज घन घोर' से उनकी गड़गड़ाहट का। इसीप्रकार 'राग-अमर अम्बर में भर निज रोर' से प्रतीत होता है कि बिजली की चमक और उसका स्वर आकाश में छा गया है। 'झर-झर-झर-निर्झर' से मुसलधार वृष्टि का अनवरत स्वर ध्वनित होता है। 'राग-अमर' में इस ध्वनि की चिरन्तनता की भी व्यंजना करा दी गई है। ध्वनि की शाश्वत स्थिति को अन्य पंक्तियों के द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है-

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 210*
2. *वही 'परिमल' पृ. 116*

"शब्द और अर्थ भ्रम-भेद-निवारण
ध्वनि शाश्वत-समुद्र-जग-मंज्जन।"[1]

इसमें शब्द और अर्थ का भेद ध्वनि द्वारा बताया गया है और उस ध्वनि को शाश्वत सत्य।

सूक्ष्म एवं सशक्त व्यंजना का प्रयोग निराला के 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका' जैसे काव्य संकलनों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े मिलते हैं। 'तोड़ती पत्थर', 'सरोज स्मृति' आदि ऐसी कविताएँ हैं जिनमें व्यंजना का सफल निर्वाह हुआ है।

'तोड़ती पत्थर' से-

"वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैं ने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
.....
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार-
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार"[2]

पत्थर तोड़नेवाली, समस्त मज़दूर वर्ग का प्रतिर्निधित्व करती है। इस वर्ग की दीन स्थिति और विवशता का प्रतिफलन इन पंक्तियों में निहित है। गुरु हथौड़े की चोट पत्थर पर

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 226*
2. *वही (भाग-2) 'अनामिका' पृ. 323*

पड़ती है, लेकिन उसका ध्वन्यार्थ हथौड़े की चोट के अट्टालिका पर पड़ने में हैं। इसमें वर्ग संघर्ष के वैषम्य को भी सशक्त व्यंजना हुई है।

'सरोज-स्मृति' में निराला ने सरोज के परायेपन की व्यंजना के लिए दूसरे पक्षी के नीड़ में पलनेवाली पिक बालिका का भाव-चित्र कल्पना के सहारे किया है-

"जाना बस, पिक-बालिका प्रथम
पल अन्य नीड़ में जब सक्षम
होती उड़ने का, अपना स्वर
भर करती ध्वनित मौन प्रान्तर।"[1]

व्यंजनाशक्ति का यह उदाहरण उनकी भावात्मक सृष्टियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कुछ रचनाओं में एक शब्द की पुनः पुनः आवृत्ति द्वारा कवि ने उन्हें विशिष्ट संरचना से युक्त किया है। 'अर्चना' में 'नील' शब्द की यह आवृत्ति दृष्टव्य है-

"नील जलधि जल
नील गगन तल
नील कमल-तल
नील नयन द्वय।"[2]

इसमें 'नील' शब्द, विस्तार और गहराई की व्यंजना करता है जिसके माध्यम से कवि ने प्रकृति के विराट् और कोमल दोनों रूपों को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत गीत की हर पंक्ति 'नील' शब्द से शुरू होती है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 301*
2. *वही 'अर्चना' पृ. 377*

इन उदाहरणों के अतिरिक्त और भी कई दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें व्यंजना का सफल निर्वाह हो पाया हैं। जैसे 'परिमल' में संकलित 'ध्वनि', 'यमुना के प्रति', 'विधवा', 'संध्या सुन्दरी', 'आवाहन', 'शेफालिका', 'धारा', 'दीन' आदि और 'अनामिका' में संकलित 'हिन्दी के सुमनों के प्रति', 'दान', 'खण्डहर के प्रति', 'दिल्ली', 'आवेदन', 'बनवेला', 'कविता के प्रति', 'ठूँठ' आदि उनमें से कुछ हैं।

1.2 निराला के काव्य में ध्वनियोजना:-

ध्वनि काव्यभाषा का मुलाधार है। निराला के भाषा-प्रयोग में ध्वनि का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने शब्द सृष्टि का मूल ओंकार ब्रह्म माना है। शब्द ब्रह्म है, 'वाग्वै सम्राट परम ब्रह्म'। इस शब्द-ब्रह्म की जितनी साधना निराला ने की है उतनी किसी अन्य कवि ने नहीं। उनके ही शब्दों में "हमारे शब्द-शास्त्र के पारदर्शी ऋषियों ने त्रिस्वरात्मक ओंकार के बिन्दु को शब्द-सृष्टि का मूल बताया है।"[1] व्यंजन ध्वनियों के सौंदर्य निष्पादन के साथ-साथ वे स्वर ध्वनियों के प्रयोग में भी बड़े समर्थ हैं। फिर भी उनका काव्य स्वर-प्रधान है। गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार, "कविता में स्वर ध्वनियों के आधार पर रचा गया नादतत्त्व अधिक संश्लिष्ट और आन्तरिक गतिमयता अर्थात् बलवत्ता उत्पन्न करता है।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि कविता में स्वर ध्वनियों के संयोजन से नादतत्त्व की उत्पत्ति और आन्तरिक गतिमयता का निर्वाह होता है। इससे कविता काफी शक्तिशाली बन जाती है।

"प्रिय यामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण मुख -
तरुण-अनुरागी।"[3]

---

1. *निराला - 'चयन' पृ. 19*
2. *गिरिजाकुमार माथुर-'नई कविता की सीमाएँ और संभावनाएँ' - पृ. 25*
3. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 238*

इस गीत में निराला ने स्वरों को लय-गति से प्रभावित ध्वनिसौंदर्य को उभारा है। उनकी 'खुले केश अशेष शोभा भर रहे' पंक्ति में 'ए' स्वर की विशेष लय गति है, तो 'ज्योति की तन्वी तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी' में इ, ई, ई, ई, इ, ई स्वर की सर्जनशीलता है। इन स्वर ध्वनियों का उन्होंने आरोही-अवरोही विधान भी बड़ी सूक्षमता से समाहित किया है, जो 'खुले केश अशेष' जैसी पंक्तियों में दृष्टव्य है।

निराला के संपूर्ण अन्तःसंगीत में सुर और शब्द का अद्‌भुत संयोग है। उनकी भाषिक संरचना का मूलाधार यही है। अर्थ को स्वर का आधार देकर ही निराला ने अपने गीतों की भाषिक संरचना तैयार की है। प्रायः वे शब्द की ध्वनि और उसके स्वरावर्तों से ही पहले आकर्षित होते हुए दिखाई देते हैं। वे शब्द को उस छोर में जाकर पकड़ते हैं जहाँ उसके भीतर का सघन स्वर कवि के मौन संगीत को ध्वनित कर सके।

निराला की कविताओं को पढ़ने से भी स्पष्ट हो जाता है कि वे ध्वनि और शब्द के प्रति ज़्यादा उन्मुख है। संगीतात्मकता को मन में रखते हुए ही उन्होंने शब्दों का चयन किया है। "निराला ने व्यंजनों के प्रभावों के अतिरिक्त स्वरों की लय, गति का भी संयोजन करते हुए वर्णो का भास्वर चमत्कार दी है जो सार्थक है।"[1] इस उद्धरण से भी प्रमाणित होता है कि वे मात्र व्यंजनों के प्रभाव से ही प्रभावित नहीं, बल्कि स्वरों की लय, गति अर्थात् संगीतात्मकता को भी जोड़कर वर्णों को भास्वर अथवा अत्यन्त प्रोज्वलित बना दिया है। यही वर्ण भावस्वरता ही उनके गीतों की भाषा की सबसे प्रमुख विशेषता है। मगर यह भास्वरता, अर्थ सन्धान से नहीं ध्वनि लहरियों से उजागर होती है। इसप्रकार परिमित ध्वनियों में अपार भावनाओं का उद्‌बोधन महाकवि की पावन कला की सबसे बड़ी विशेषता है। भाषा के अगाध समुद्र का पारद्रष्टा होने के कारण ध्वनियों की योजना नितान्त प्राणमयी है।

---

1. डॉ. पण्डित शशिभूषण सीतांशु - 'वर्ण चमत्कार का कवि निराला' - पृ. 50

1.2.1 'श-ण-व-ल' एवं 'स-म-ब-ल' ध्वनियों का प्रयोग :-

निराला के काव्यों में प्रयुक्त दो प्रकार की ध्वनि पद्धति है 'श-ण-व-ल' ध्वनि-पद्धति और 'स-म-ब-ल' ध्वनि-पद्धति। उनको दोनों प्रकार को ध्वनि-पद्धतियों की प्रकृति का ज्ञान था। उन्होंने 'स-म-ब-ल' ध्वनियों पर अधिक बल दिया है। इन ध्वनियों से उनकी कविताओं में नादसौंदर्य का विधान हुआ है। इसप्रकार उत्पन्न नादसौंदर्य की पृथक्-पृथक् आवृत्तियाँ उनके काव्य की अर्थवत्ता और संप्रेषणीयता में वृद्धि करती है।

'श-ण-व-ल' ध्वनियों में 'श' की आवृत्ति उनकी कई कविताओं में मिलती है-

"बीते अविरत शत-शत
अब्द, शब्द, अप्रतिहत..."[1]
* * * * * *
शत-शत वर्षों का मग
हुआ पार देश का, न
.....
दिशि-दिशि से निशि के ठग।"[2]
* * * * * *
"मुकुट शुभ्र हिम - तुषार,
प्राण प्रणव ओङ्कार
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शत मुख - शतरव - मुखरे"[3]

प्रथम उद्धरण में 'श' की आवृत्ति 'तीन' बार, दूसरे में 'छह' बार और तीसरे में 'चार' बार हुई है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 260*
2. *वही पृ. 257*
3. *वही पृ. 232*

'ण' ध्वनि की आवृत्ति विशेष रूप से संगीतात्मकता की वृद्धि करती है। 'गीतिका' की 'मौन रही हार' में 'ण' ध्वनि की आवृत्ति देखिए-

"कण-कण कर कङ्कण प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी,
रणन-रणन, नूपुर उर लाज लौट रङ्किणी...."[1]
* * * * * * * * * * *
"शारद-शत-जीवन की शरण न दो-वरण करो
अन्ध-विश्व-जन्म-बन्ध मरण हरो-मरण हरो।"[2]
* * * * * * * * * * *
"दे, मैं करूँ वरण
जननि, दुःखहरण पद-राग रञ्जित मरण।"[3]

पहले उद्धरण में 'ण' ध्वनि का 'नौ' बार, दूसरे में 'चार' बार और तीसरे में 'तीन' बार प्रयोग हुआ है।

'व' ध्वनि की आवृत्ति निराला की कविताओं में, कई स्थानों में हुई हैं-

"विजन-वन-वल्लरी-पर
सोती थी सुहाग-भरी..."[4]
* * * * * * * * *
'वर दे, वीणावादिनी वरदे
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 240*
2. *वही पृ. 227*
3. *वही पृ. 229*
4. *वही 'परिमल' पृ. 31*

भारत में भर दे।

.....

नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव
नवल कण्ठ नव जलद-मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग वन्द को
नव पर, नव स्वर दे।"[1]

दोनों में से प्रथम में 'व' ध्वनि की आवृत्ति 'तीन' बार और दूसरे में 'सत्रह' बार हुई है।

'श-ण-व-ल' ध्वनियों के प्रयोग करते हुए भी वे 'स-म-ब-ल' ध्वनियों के प्रयोग के पक्ष में रहा है। इसमें से 'ल' ध्वनि दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

निराला-काव्य में कहीं-कहीं 'श-ण-व-ल' से पूर्ण रूपेण मुक्त है। ऐसे स्थानों में उन्होंने दन्त्य 'स' और 'र' जैसे वर्णों की आवृत्ति द्वारा कविता में कोमल प्रभाव उत्पन्न किया है, साथ में विशिष्ट ध्वनि का महत्त्व बढ़ाया है। निराला की पदावली दन्त्य प्रयोगों से संपन्न है। उनकी मान्यता है कि भारतीय कविता का प्रभावपक्ष दन्त्य प्रयोगों की प्रकृति का ही अनुसरण करता है। यह बात सच भी है कि विशेषकर हिन्दी के समस्त भक्त कवियों ने जिस व्रजभाषा का और अवधी भाषा का आधार लिया है वे सबके सब दन्त्यप्रधान है। निरालाजी के 'संध्या-सुन्दरी' से एक उद्धरण-

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे"[2]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 210*
2. *वही 'परिमल' पृ. 65*

को प्रस्तुत करते हुए लिखा है "देखिए अगर श-ण-व-ल कहीं हो। फिर खड़ीबोली का उच्चारण मिलाइए अनुकूल है या प्रतिकूल।"[1]

प्रस्तुत पद्य भाग 'श-ण-व-ल' ध्वनियों से पूर्ण रूपेण मुक्त है, फिरभी अपेक्षित प्रवाह, गति एवं लय से कविता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इससे निराला की काव्यभाषा में 'स' ध्वनि की विशिष्ट और साभिप्राय संयोजन स्पष्ट हो जाता है। निराला की दन्त्य 'स' ध्वनि के व्यवस्थित चमत्कार के अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है-

"सोती थी सुहाग-भरी स्नेह - स्वप्न - मग्न"[2]

वस्तुतः निराला की काव्यभाषा में यदि किसी एक ध्वनि के सर्वाधिक प्रयोग हुए हैं तो वह ध्वनि 'स' ही है। इसके अलावा उनकी काव्यभाषा में 'म' ध्वनि का माधुर्य-मोह भी अपनी व्यापकता में छाया हुआ है–

"मधु-ऋतु-रात मधुर अधरों की पी मधु सुध बुध-खो ली,
खुले अलक, मूँद गये पलक दल; श्रम-सुख की हद हो ली।"[3]

* * * * * * *

"मंजरियों के मुकुटों में
नव नीलम आम-दलों के
जोड़ों मंजुल घड़ियों में।"[4]

पहले उद्धरण में 'म' को 'पाँच' बार और दूसरे में 'सात' बार आवृत्ति हुई है।

---

1. *डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला की साहित्य साधना' (भाग-2) पृ. 11*
2. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 31*
3. *वही 'गीतिका' पृ. 212*
4. *वही 'परिमल' पृ. 178*

ओष्ठ्य 'ब' ध्वनि भी निराला की काव्यभाषा की विशिष्ट ध्वनि है-

"और मुखर पायल स्वर करें बार-बार
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार।"[1]

* * * * * * * * * *

"बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल; मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली -
रही यह एक ठठोली।"[2]

पहले उद्धरणों में 'ब' ध्वनि का 'तीन' बार और दूसरे में 'पाँच' बार प्रयोग हुआ है। 'स-म-ब-ल' पद्धति की अन्तिम ध्वनि 'ल' दन्त्य है। इस ध्वनि का प्रयोग निराला की लगभग सभी कविताओं में मिलते हैं। 'परिमल' की प्रस्तुत पंक्तियों को देखिए-

"लख ये काले-काले बादल,
नील सिन्धु में खुले कमल-दल
हरित ज्योति, चपला अति चंचल
सौरभ के, रस के।"[3]

* * * * * * *

"नयनों के डोरे लाल, गुलाल-भरे, खेली होली।"[4]

* * * * * * *

'चंचल कैसे रूप - गर्व-बल
तरल सदा बहती कल-कल-कल

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 240*
2. *वही पृ. 213*
3. *वही 'परिमल' पृ. 186*
4. *वही 'गीतिका' पृ. 212*

रूप-राशि में टलमल-टलमल
कुन्द-धवल-दशना।"[3]

इन उदाहरणों में से प्रथम में 'ल' ध्वनि की 'दस' बार आवृत्ति हुई है। दूसरे उद्धरण में 'छह' बार और तीसरे में 'ग्यारह' बार।

किसी किसी कविता में एक साथ स-म-ब-ल ध्वनियों के सम्पर्क एवं विशिष्ट प्रयोग परिलक्षित है। दन्त्य 'न'का प्रयोग भी अधिक हुआ है–

"नयनों में हँस - हँस जाती
कौन, न मर्म समझ पाती,
मौन कौन उर में गाती,
आओ हे प्राणों के घन।"[2]

इसमें 'न' ध्वनि की आवृत्ति 'सात' बार हुई है साथ में 'त' ध्वनि की भी आवृत्ति उनकी रचनाओं के हुई है।

निराला ने बोलचाल की स्वाभाविकता को दर्शाने केलिए और मिठास एवं ध्वनिसौंदर्य लाने केलिए उर्दू शब्दों का व्यवहार भी किया है-

"तदबीर औ' तलवार पर
पानी चढ़ावें खूब"[3]
** * * * * **

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 207*
2. *वही पृ. 220*
3. *वही 'परिमल' पृ. 155*

"निस्तब्ध मीनार,
मौन है मकबरे।"[3]

पहले उद्धरण में 'तदबीर' दूसरे में 'मीनार', 'मकबरे' आदि उर्दू के ही शब्द हैं।

उन्होंने अपनी कविता में वाक्य की जगह शब्द संकेतों या अधुरे वाक्य संकेतों का आधार अधिक लिया है। दरअसल निराला वाक्य को शब्द और शब्द को केवल अर्थ की पृष्ठभूमि में ही अपनी कविताओं में प्रयुक्त नहीं करते, बल्कि उनकी दृष्टि अर्थ से अधिक उसमें निहित सूक्ष्म लयात्मकता, ध्वनिसंयोजना तथा रंगमयता पर जाती है।

1.2.2 संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग :-

निराला की सफल एवं सार्थक ध्वनियोजना में संगीतात्मक ध्वनियों का प्रयोग अपना स्थान रखता है। उनकी रचनाओं में इसकी कई कोटियाँ मिलते हैं।

'रे कह', 'रे', 'री', 'हे' आदि ध्वनियों का प्रयोग उन्होंने किया है।

जैसे,

"कौन तम के पार? (रे कह)
अखिल पल के स्रोत जल जग
गगन घन-घन धार (रे कह)।"[2]
* * * * * * *
रे कुछ न हुआ तो क्या?"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'अनामिका' पृ. 261*
2. *वही 'गीतिका' पृ. 240*
3. *वही पृ. 223*

* * * * * *

"बीते रे गयी निशी"[1]

* * * * * *

"जीवन में रे मृत्यु के विवर"[2]

* * * * * *

"रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी।"[3]

* * * * * *

"कौन री, रँगी छवि वारी?"[4]

* * * * * *

"गरजो हे मन्द्र, वज्र-स्वर"[5]

इस प्रकार संगीतात्मक ध्वनियों का सफल प्रयोग किया गया है। निराला की काव्यभाषा में संगीतात्मक ध्वनि की दूसरी कोटि, टेक की पांक्त में है, जहाँ अन्तिम ध्वनियों का पूर्ववर्ती ध्वनियों के लयात्मक आवर्तन की है-

"कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना?
सीखा केवल हँसना-केवल हँसना -
शुभ्र किरण-वसना।"[6]

* * * * * * * *

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 225
2. वही पृ. 237
3. वही पृ. 213
4. वही पृ. 228
5. वही पृ. 231
6. वही पृ. 207

"प्राण-धन को स्मरण करते
नयन झरते-नयन झरते।"[1]

संगीतात्मक ध्वनियों को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ उन्होंने काव्य के अर्थगत नादसौंदर्य को भी बनाए रखा है।

1.2.3. निराला के काव्य में अर्थगत नादसौंदर्य :-

काव्य में नादसौंदर्य उत्पन्न करनेवाले ध्वनितत्त्व का महत्त्व निर्विवाद एवं असंदिग्द है। काव्य में नादसौंदर्य की सृष्टि शब्दों की ध्वनि से ही होती है। यही कारण है कि नादसौंदर्य उत्पन्न करने केलिए सामान्य शब्द की नहीं, ध्वन्यात्मक शब्दों की आवश्यकता होती है। शब्द में निहित ध्वनियों एवं शब्दों के अर्थ का अभिन्न संबन्ध है। नाद, स्वर एवं व्यंजन ध्वनियों के गर्भ में निहित अर्थ को प्रकट करता है। निराला काव्य में शक्तिगत नादयोजना की सार्थकता मुख्यतया अर्थगत सौंदर्य पर निर्भर करती है। निराला को नादसौंदर्य का सहज ज्ञान था। वे एक एक शब्द में ध्वनि देखना चाहते थे।

निराला की छन्दोबद्ध एवं मुक्तछन्द दोनों प्रकार की रचनाओं के अर्थगत नादसौंदर्य का अपना अलग स्थान है। "ध्वनि प्रवाह छन्द की गति से नियन्त्रित होता है, छन्द पर निर्भर होता है। एक ही छन्द में निराला ध्वनि की अनेक भंगिमाएँ प्रस्तुत करते हैं।"[2] निराला की ध्वनि सही अर्थ में छन्द और भाव से मैत्री करती हुई चलती है।

अर्थगत नादसौंदर्य की दृष्टि से निराला की 'राम की शक्तिपूजा' सर्वाधिक सफल कविता है। इस लंबी कविता का आरंभ ही नादसौंदर्य से होता है-

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 227*
2. *डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला की साहित्य साधना' (भाग-२) पृ. 345*

"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर"[1]

'रवि हुआ अस्त' में दो भाव व्यंजित होता है। यह एक ओर युद्ध की समाप्ति को ध्वननित करता है तो दूसरी ओर राम की पराजय को भी व्यंजित करता है। राम सूर्यकुल की सन्तान है। इस युद्ध से उनके गौरवमय वंश का सूर्य अस्त हो जाता है।

मुक्तछन्द में लिखी हुई कविताओं में भी अर्थगत नादसौंदर्य का सफल निर्वाह हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, "मुक्तछन्द के प्रवाह को संबद्ध करने केलिए शब्दावली में आन्तरिक गठन पैदा करने केलिए निराला ने एक विशेष कौशल से काम लिया है जिसे वह ध्वनि का आवर्तन कहते थे।"[2] 'जागो फिर एक बार', 'तुलसीदास', 'बादलराग' आदि इसके सशक्त प्रमाण है।

"समर में अमर कर प्राण
गान गाये महा सिन्धु-से
सिन्धु-नद-तीरवासी
सैन्धव तुरंग पर।"[3]

इन पंक्तियों में समर-अमर, प्राण-गान, सिन्धु-सैन्धव आदि में समान ध्वनियों की आवृत्ति की गई है। पहली दृष्टि में यह अनुप्रास दीख सकते हैं, लेकिन उससे कई गुना अर्थगत नादसौंदर्य ही इससे झलकते हैं।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 310*
2. *डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला' पृ. 190*
3. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 141*

निराला के 'तुलसीदास' में भी उच्च कोटि का नादसौंदर्य विधान मिलता है। कवि ने भारत, तमस्तूर्य, दिङ्मण्डल, घन, प्राणों के चुम्बन, धूल धूसरित छवि, रंग पर रंग छोड़ना आदि अर्थ संपन्न नादात्मक शब्दों का प्रयोग किया है-

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण"[1]

भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त होने का अवसादपूर्ण चित्र अंकित है। इसमें उन्होंने आद्यन्त नाद-प्रधान शब्दों का प्रयोग किया है। नादसौंदर्य की दृष्टि से 'तुलसीदास' बेजोड़ कृति है। एक सौ छन्दों के इस काव्य में आद्यन्त नादछवियाँ प्राप्त है।

इस सन्दर्भ में उनके शब्द-युग्मों के प्रयोग पर प्रकाश डालना संगत होगा। शब्द-चित्र तथा ध्वन्यात्मकता लाने के अतिरिक्त काव्य को बल प्रदान करने केलिए शब्द-युग्मों का प्रयोग करते है। निराला के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगत होती है। 'आराधना' से एक उदाहरण देखिए -

"छलके-छलके पैमाने क्या
आये बेमाने माने क्या,
हलके-हलके हल के न हुए,
ढलके-ढलके ढल के न हुए,

---

1. निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 267

उफले-उफले फल के न हुए,
बेदाने थे तो दाने क्या?"[1]

इसमें शब्द-युग्मों की माला को उन्होंने प्रस्तुत किया है जो भाव एवं अर्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम है, जैसे 'छलके-छलके', 'हलके-हलके', 'ढलके-ढलके', 'उफले-उफले' आदि। अन्य कुछ उदाहरण है - 'झूम-झूम', 'कण कण', 'टलमल-टलमल', 'रणन-रणन', 'किण-किण' आदि। इस प्रकार समान शब्दों की आवृत्ति के काव्य में एक प्रकार का सौंदर्य आ जाता है जो अर्थगत भी है और नादगत भी। इसलिए संगीत-विधान भी संभव हो पाता है।

1.2.4 निराला-काव्य में अर्थध्वननकारी शब्दयोजना :-

भाषा में अर्थध्वननकारी शब्दयोजना का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जड़-चेतन सृष्टि से जो ध्वनि उद्‌भूत होती है उसका अभिव्यक्तानुकरण इतना शक्तिशाली होता है कि वह ध्वनि के उच्चारण मात्र से अपने अर्थ का बोध करा देता है। यही कारण है कि विश्व के साहित्य में कवियों द्वारा ऐसे शब्दों का जी खोलकर प्रयोग किया गया है जो अपनी ध्वनि से स्वतः ही अर्थ का छनन कर देते हैं। केवल ध्वनि के आधार पर अर्थ का उद्‌बोधन हो जाना इस प्रकार के शब्दों की शुद्ध संगीतात्मक प्रकृति का परिचायक है। अर्थध्वननकारी प्रयोग द्वारा कवि न केवल नादसौंदर्य की सृष्टि में समर्थ होते हैं, अपितु इनके द्वारा भाषा की अर्थव्यंजना की शक्ति, मुखरता तथा सस्वरता में भी वृद्धि होती है:-

"वे गए असह सुख भर
वारिद झर झर झर कर

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'आराधना' पृ. 416*

नदि कल कल छल, छल सी

वह छवि दिगन्त पल की।"[1]

* * * * * * *

"छल-छल-छल कहता यद्यपि जल,

वह मन्त्र-मुग्ध सुनता कल-कल।"[2]

* * * * * * *

"बाजे नूपुर खन-रिन-रिन-झन।"[3]

इन उद्धरणों में रेखांकित शब्द ऐसे हैं जो अपनी ध्वनि मात्र से ही उच्चारण के साथ अपने अर्थ का द्योतन करा देते हैं।

अनुभूति और अभिव्यक्ति मूलतः भिन्न नहीं है। अभिव्यक्ति की स्फूर्ति एवं सप्राणता शब्दों की ध्वनन शक्ति पर पर्याप्त सीमा तक आधृत है। शब्द एक ओर तो अर्थ की प्रतीति कराकर वस्तु अथवा भाव का बिंब मनः चक्षुओं के सम्मुख जगाते हैं; दूसरी ओर अपनी ध्वनि से अर्थ को मुखर करके आन्तरिक श्रवणों पर एक ध्वनि चित्र भी उतार देते हैं। यह ध्वनि-चित्र शब्द की आन्तरिक अर्थ व्यंजना एवं बाह्य अर्थबोध की अन्विति का ही परिणम होता है।

वैसे तो प्रत्येक शब्द किसी न किसी सीमा तक अपने उच्चारण के क्षण में नाद की एक ऐसी क्षीण चेतना जगा देती है, जो बिना अर्थबोध कराये भी ध्वनि मात्र से अर्थ की एक अस्पष्ट रेखा तरंगायित कर देती है, तथापि कुछ शब्दों में अनुकरणात्मक या अनुरणनात्मक

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 249*
2. *वही (भाग-1) 'अनामिका' पृ. 269*
3. *वही 'परिमल' पृ. 186*

गुण दूसरों की अपेक्षा अधिक होने के कारण अर्थध्वनन की शक्ति विशेष मुखर होती है। इन शब्दों के श्रवण भाव से ही उनकी अर्थव्यंजना आन्तरिक कर्ण पटल पर प्रतिध्वनित हो उठती है। यहाँ नादयोजना को ही महत्त्व दिया है। प्रत्येक वस्तु से उद्भूत नाद पृथक् - पृथक् होते हैं। उसीप्रकार प्रत्येक शब्द से आनेवाली ध्वनि अलग-अलग अस्तित्व रखती है। इसी कारण से ध्वनि सुनते ही शब्द के अर्थ आप ही व्यक्त हो जाता है।

ध्वनि मात्र से ही अर्थ मुखर करने की शक्ति अनुरणनात्मक या अनुकरणात्मक शब्दों में विशेष होती है। प्रकृति और जीवन की मूलभूत अनुभूतियों से संबद्ध होने के कारण ऐसे शब्द अकृत्रिम उद्गार तथा प्राकृतिक ध्वनियों को मुखर करने केलिए विशेष रूप से प्रयुक्त होते है।

मेघ का गर्जन, बिजली की कड़क, निर्झर का कल-कल नाद, आदि अनेक ध्वनियाँ आज भी अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इसके फलस्वरूप कवियों ने प्रकृति के भीषण, विराट, कोमल, मधुर, शान्त दृश्यों- अवस्थाओं को अंकित करने तथा उनकी पृष्ठभूमि में मानवीय व्यापारों की अकृत्रिम योजना केलिए इन ध्वनियों का प्रचुर प्रयोग किया है-

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर!
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
.....
.....
बहता, कहता कुल कुल कल कल कल कल।"[1]

यहाँ बादल के क्रिया व्यापारों की, आन्तरिक व्यंजन ध्वनि प्रतिमाओं के रूप में मुखर हो उठी है, 'झूम-झूम', 'गरज-गरज', 'झर-झर', 'कल-कल' आदि अनुरणनात्मक

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 116*

ध्वनियों के प्रचुर प्रयोग से संपूर्ण चित्र सजीव हो उठे हैं। साथ में उपर्युक्त ध्वनियों की आवृत्ति से नादसौंदर्य भी आ जाते हैं।

"मेरा पतझड-हरा हृदय हर
पत्रों के मर्मर के सुखकर....."[1]

पत्रों की मर्मर ध्वनि बहुत समय पहले से हमारे काव्यजगत् में प्रयुक्त हैं। प्राकृतिक सौंदर्य को पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति दे पाई है। अनुकरणात्मक ध्वनियों में नादात्मकता अधिक होने के कारण ध्वनि-चित्र अधिक संयत और सौम्य उतरते हैं।

नादतत्त्वों का आधार व्यंजनों की मैत्री है। किन्तु केवल सानुप्रास वर्णों का चयन ही यहाँ पर्याप्त नहीं होता। वह मात्र बहिरंगी होकर रहेगा। इसके स्थान पर शब्दों की आन्तरिक ध्वनि का परिज्ञान एवं अनुवाद भी यहाँ अपेक्षित है। इसप्रकार ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा भाव-संप्रेषण में सहायता मिलती है। दूसरे शब्दों में भाव को संप्रेषित करने में अर्थध्वननकारी या ध्वन्यात्मक शब्दों का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसप्रकार के नादसौंदर्य केलिए शब्दालंकारों की योजना पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

1.2.5 निराला के काव्य में शब्दालंकार योजना:-

शब्दालंकार के प्रयोग से नादसौंदर्य की वृद्धि होती है। काव्य-योजना का यह बहिरंग पक्ष है। शब्दालंकार में ध्वनि ही प्रमुख है। प्राचीन आचार्यों ने अंशतः शब्दालंकार के अन्तर्गत भाषा संबन्धों के इस तत्त्व को समाहित किया है। निराला के काव्य में न केवल शब्दालंकार नियोजित है, बल्कि उनकी संगीतात्मक ध्वनियाँ भी सहृदय पाठकों को प्रभावित करती है। मुक्तछन्द में दिए हुए उनके विराम और प्रयुक्त शब्दालंकार उनके काव्यकौशल के द्योतक हैं-

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 247

"देख यह कपोत कण्ठ
बहुबली कर-सरोज
उन्नत उरोज पीन क्षीणकटि
नितंब भार चरण सुकुमार
गति मन्द-मन्द,....."[1]

यहाँ सरोज के साथ उरोज, पीन के साथ क्षीण, भार के साथ सुकुमार जैसे प्रयोगों से शब्दालंकार, सुन्दर भाव की नियोजना करते हैं। शब्दालंकारों में से अनुप्रास को उन्होंने पर्याप्त महत्त्व दिया है।

1.2.6 निराला के काव्य में अनुप्रास विधान :-

निराला का अनुप्रास प्रेम बहुत ही प्रसिद्ध है। उनकी काव्यभाषा में बड़ी मात्रा में आनुप्रासिकता का निर्वाह हुआ है, जिससे उनकी कविताओं में लय-योजना बहुत दूर तक प्रभावित है। यह सानुप्रासिकता पंक्ति विशेष या चरण विशेष में अपना पूरा प्रभाव लेकर आयी है। उन्होंने वर्णमूलक ध्वनिमूलक अंत्यानुप्रास (कई बार ध्वनि साम्य के आधार पर ही आता है) आदि सभी प्रकार के अनुप्रासों का प्रयोग किए हैं। अनुप्रास केलिए आपने कुछ शब्द भी गढ़ लिए हैं। 'अवगुण्ठन' के साथ 'सुखलुण्ठन'; 'कीर्ण कारिणी' के साथ 'शीर्ण सारिणी', 'तीर्ण तारिणी' आदि शब्दों का प्रयोग भी आपने सहज ही किया है। उन्होंने विशेषणों के प्रयोग में भी अनुप्रासों का प्रयोग किया है, जैसे, 'सुरभि-समीर', 'मुग्ध मौन मय' आदि।

मुक्तछन्द में रची हुई निराला की कविताओं का एक मुख्य लक्षण अनुप्रास है। निराला की प्रायः प्रत्येक काव्य-पंक्ति में कोई न कोई वर्ण-विशेष प्रमुख होता है और उसी वर्ण के आधार पर सांगीतिक लयात्मकता अपना चमत्कार उपस्थित करती है -

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 45

"वह रँग-दल बदल-बदलकर
नव-नव परिमल मल-मलकर
जग भौंर भुला भूलों से
पहली फूलों का हार।"[1]

इसमें 'र' ध्वनि की विशेष आवर्तक योजना दृष्टव्य है। साथ ही 'ल', 'व', 'न', 'म', आदि ध्वनियों की भी आवृत्ति हुई है। 'बदल', 'नव', 'मल' आदि शब्दों की आवृत्ति से अर्थ को अधिक स्पष्टता भी मिली है।

'परिमल' से एक उदाहरण है-

"निशि-दिन तन धूलि में मलिन
क्षीण हुआ छन-छन मन छिन-छिन।"[2]

इसमें 'न' की आनुप्रासिक योजना दृष्टव्य है, जिससे संगीत को बल मिला है। आनुप्रासिकता के सहारे लय-संप्रेषण का एक श्रेष्ठ उदाहरण निम्न पंक्तियों में भी देखा जा सकता है-

"डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।"[3]

यहाँ आरंभ और अन्त में 'ड'/'ल', 'ड'/'ल' तथा मध्य 'ल'/'र' 'ल'/'र' का आवर्तन तो है ही तथा मध्य में 'री' जैसी सस्वर ध्वनि का भी प्रयोग किया है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 250*
2. *वही पृ. 230*
3. *वही 'परिमल' पृ. 231*

अनुरणनात्मक, अर्थध्वननकारी शब्दों तथा अनुप्रासगत व्यंजनमैत्री के आश्रय से ध्वन्यर्थव्यंजना पुष्ट हो जाता है।

1.2.7 निराला-काव्य में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग :-

इस अलंकार का अभिप्राय काव्यगत शब्दों की उस ध्वनि से है जो शब्द समर्थ्य से हो प्रसंग और अर्थ का उद्‌बोधन कराकर एक चित्र-सा खड़ा कर देती है। यही नहीं काव्य के आन्तरिक गुणों से अपरिचित रहने पर भी भाषा का बाह्य सौंदर्य श्रोता और पाठक के हृदय में एक आकर्षण पैदा कर देता है। इसमें भाव और भाषा का सामंजस्य तथा स्वरैक्य की आवश्यकता है। यद्यपि इसमें अनुप्रास और यमक का ही आभास है पर उससे यह एक विशिष्ट वस्तु है और इनके रहते हुए भी उनकी ओर ध्यान न जाकर ध्वन्यर्थव्यंजना की ओर ही खिंच जाता है। इस में भावबोधकता होने से ध्वनि की ही प्रधानता मान्य हो जाती है। यही नहीं नाद बिंब केलिए प्रायः ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् ध्वनियों के नादपूर्ण चयन पर ही यह बिंब आधारित है। निराला ने धीरे-धीरे अपनी अनुप्रासमयी शैली का ऐसा विकास किया कि संगीतात्मकता और ध्वन्यर्थव्यंजना का समावेश अनुप्रास में सहज भाव से होने लगा।

निरालाजी ने ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकारों के सहयोग से विभिन्न ध्वनिबिंब प्रस्तुत किए हैं। प्रकृति-परक रचनाओं में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग अधिक हुआ है।

इसका संबन्ध कर्णेन्द्रिय से है। नादबिंब से कविता में अपूर्व छटा या सौंदर्य आ जाता है। 'बादल राग' से उदाहरण है-

"अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू, बरस-बरस रस धार

उथल-पुथलकर हृदय -
मच हलचल चल रे चल
मेरे पागल बादल।
.....
हँसता है नद खल-खल
बहता कहता कुलकुल कलकल"[1]

इन पंक्तियों में ध्वन्यात्मक भाषा का उत्कृष्ट रूप देखा जा सकता है। जिसके शब्द बन्ध और नादसौंदर्य अपने आप भावों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। मात्र ध्वनि माधुरी केलिए ही नहीं अर्थ गौरव केलिए भी विविध प्रकार के अनुप्रास एवं अनुप्रास-खण्डों का प्रयोग होता है।

कतिपय स्थानों पर कवि निराला ने ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार की योजना से परे दृश्य उभार दिए हैं-

"मूँद पलक प्रिया की शय्या पर
रखते ही पग उर घर-घर-घर।"[2]

इसमें, प्रेमी से प्रथम मिलन पर होनेवाली घबराहट का अर्थबोध कवि ने 'घर-घर-घर' शब्दों के द्वारा करवाया है। इसीप्रकार युद्ध केलिए प्रस्थान करती सेना का चित्र भी ध्वन्यर्थव्यंजना वाले शब्दों के माध्यम से उभारा है-

"रथ का घर्घर
घंटा की घन-घन
पदलिकों का उन्माद-पद पृथ्वी मर्दन"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 116*
2. *वही (भाग-2) 'नयेपत्ते' पृ. 186*
3. *वही पृ. 79*

'राम की शक्तिपूजा', 'प्रेयसी' आदि जो 'अनामिका' में संकलित है, 'परिमल' में संकलित 'संध्यासुन्दरी', 'बादलराग', 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार' आदि 'गीतिका' में संकलित 'वर दे वीणावादिनी वरदे', 'मौन रही हार', 'नयनों के डोरे', 'वर्ण चमत्कार', 'अस्ताचल रवि जल-छल-छल-छवि' आदि रचनाओं में ध्वन्यर्थव्यंजना का प्रयोग सहज ही किया गया है।

इस सन्दर्भ में आन्तरिक साम्य की दृष्टि से नियोजित ध्वनि-आवर्तों को भी देखा जाना चाहिए। 'जागो फिर एक बार' का यह अंश प्रस्तुत है-

"प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ीबोली रही द्वार-
जागो फिर एक बार।"[1]

इसमें हारे और तारे, अरुण और तरुण के ध्वनि आवर्तों से मुक्तछन्द में प्रवाह तथा आन्तरिक संबद्धता संभव हो पायी है।

निराला मानते हैं कि भावनाएँ शब्द-रचना द्वारा-एक विशिष्ट अर्थ तथा चित्र द्वारा - परिपुष्ट होती है। भाषा की मूल इकाई होने के कारण वर्णों का अपना महत्त्व निर्विवाद है। प्रत्येक वर्ण की अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् ध्वनि होती है और यह पृथकता ही उसका गुण है। अत एव काव्य में समुचित वर्णों की योजना का बहुत महत्त्व होता है। उसके अभाव में काव्य-सौंदर्य कभी निखर नहीं सकती। नादसौंदर्य की दृष्टि से भी प्रत्येक वर्ण महत्त्वपूर्ण है। स्वर एवं व्यंजन नादविधान के महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इन्हीं के उचित प्रयोग से काव्य में

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 261

लयात्मकता आती है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्होंने मात्र वर्ण को सब कुछ माना है। उन्होंने लिखा है - "कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु उन सभी से संबद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा है।"[1]

ध्वनि की दृष्टि से निराला ने आवर्तक प्रयोगों के सहारे भी सौंदर्य का सृजन किया है। संस्कृत गुण की दृष्टि से वे ओज और मधुर गुण की ध्वनियोजना करने में आधुनिक हिन्दी काव्य के अत्यन्त समर्थ कवि सिद्ध होते हैं। उनके काव्य में ध्वनि का अविच्छिन्न प्रवाह हैं। डॉ.रामविलास शर्मा के शब्दों में ".....कहीं ध्वनि की छोटी-छोटी इकाइयाँ, कहीं उठारह-बीस पंक्तियों में ध्वनि का प्रसार है।"[2] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ध्वनि उनकी कविताओं का एक अविभाज्य तत्त्व है।

विदित है कि निराला ने अपनी कविताओं में ध्वनियों को पर्याप्त महत्त्व दिया है जिससे उसमें काव्यात्मकता के साथ-साथ संगीतात्मकता की भी रक्षा हुई है। नादमय चुने हुए परिमित शब्दों से अधिक आशय व्यक्त करने की उनकी चातुरी बहुत ही अद्‌भूत और अनोखी है। अत्यन्त सार्थक शब्द-सृष्टि द्वारा निरालाजी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है।

---

1. *निराला 'प्रबन्ध प्रतिमा' पृ. 201*
2. *डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला की साहित्यसाधना' - (भाग -2) पृ. 343*

पाँचवाँ अध्याय

निराला के काव्य में संगीततत्व का विश्लेषण

सारांश

"निराला के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण" शीर्षक इस अध्याय में, भारतीय संस्कृति में संगीत का जो विलक्षण स्थान है उसका उल्लेख करते हुए, निराला की संगीत संबन्धी मान्यताओं पर विचार गया है। संगीत के बाह्य और आन्तरिक दोनों स्वरूपों को प्रमाण साहित प्रस्तुत किया गया है। सांगीतिक दृष्टि से, उनके महत्त्वपूर्ण विचारों का उल्लेख 'गीतिका' की भूमिका में मिलते हैं; प्रस्तुत काव्य संकलन पर अलग से विचार किया गया है। साथ ही साथ संगीत के निर्वाहक तत्त्वों - संगीतात्मक पारिभाषिक शब्दावली, छन्द, लय और ताल - के पृथक्-पृथक् विश्लेषण के पश्चात् उनकी रचनाओं में प्रयुक्त वाद्योपकरणों एवं उनके नृत्य संबन्धी ज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है।

पाँचवाँ अध्याय

निराला के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण

छायावादी सीमा का उल्लंघन करके हिन्दी कविता को दूर तक प्रभावित करनेवाले महाकवि निराला के सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व का एक बहुत ही भास्वर पक्ष उनका संगीत-मर्मज्ञ एवं संगीतकार का रूप है। साहित्य के साथ उच्चतम कोटि की संगीत प्रतिभा के धनी महाकवि निराला ने हिन्दी काव्य में संगीतात्मक दृष्टिकोण से भी एक अद्‌भुत एवं नवीन प्रयोग किए। इस दृष्टि से वे आधुनिक कवियों में सर्वोपरि हैं। एक संगीतज्ञ का, संगीतकार होना ज़रूरी नहीं है। किन्तु अगर किसी में इन दोनों रूपों का समावेश हो तो वह निश्चय ही प्रतिभावान होंगे। निराला ऐसे ही प्रतिभावान कहलाने के अधिकारी रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हर्ष और शोक दोनों मूल भावों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से जितनी सहजता से संभव है उतनी शायद शब्दावली के माध्यम से संभव नहीं हो सकती। संगीत, विचार से अधिक संस्कृत-निष्ठ होता है। उसे संस्कृति की पहचान कहा भी गया है। हमारी संस्कृति की आज कोई अपनी पहचान है तो वह संगीत (शास्त्रीय) ही है। संगीत ने भारतीय संस्कृति के ताने-बाने को, सदियों से बड़ी मज़बूती से थामे रखा है।

कला के रूप में संगीत की उपयोगिता तभी तक है जब तक वह मनुष्य की सेवा करता है। जब तक संगीत का प्रयोग मनुष्यों को आपस में जोड़ने तथा उनमें संपर्क स्थापित करने केलिए होता है। वह सभ्यता के विकास में सहायक है।

प्राचीन काल में स्वयं कवि गायक हुआ करते थे, परन्तु धीरे-धीरे कवि और संगीतज्ञ एक दूसरे से हटकर अपने-अपने क्षेत्र में सिमटते चले गए। आधुनिक काल में निःसन्देह निराला ऐसे कवि है जिन्होंने कवि और संगीतज्ञ की प्राचीन परिपाटी को अपनाया है।

निराला को भारतीय दर्शन और भारतीय संगीतशास्त्र की गहरी समझ थी। उनकी कविताओं एवं गीतों में आए राग रागिनियों, छन्द, लय, ताल आदि की बुनावट से यह बात और पुष्ट हो जाती है। कहीं-कहीं तो एक ही गीत में विभिन्न रागों एवं तालों का प्रयोग कर उन्होंने अपनी पैनी समझ का परिचय दिया है।

संगीत निरालाजी का जन्मजात संस्कार है। उनको विरासत में ही संगीत मिला था। उनकी माता को भी संगीत से विशेष लगाव था और वह बैसगाड़ी के लोकगीतों को गुनगुनाती रहती थी और इसका प्रभाव निराला पर पड़ा है। इसप्रकार विरासत में मिला संगीतप्रेम और निराला का संगीत के प्रति विशेष लगाव दोनों के कारण उनका काव्य, संगीत का सहयोग पाकर अबाध गति से अग्रसर हुए। साथ-साथ महिषादल राज्य में आनेवाले प्रमुख संगीतज्ञों, घरानेदार गवैयों, तथा बड़े-बड़े अस्तादों के आगमन पर, उनके पास जाकर अपना संगीत ज्ञान वर्द्धन किया करते थे। "संगीत मर्मज्ञ होने के साथ-साथ निराला स्वयं बहुत अच्छे गायक भी ने, वह मस्ती में गाते थे। स्वर अपने आप सधे हुए लगते और शब्दों की ध्वनि के साथ वह स्वर का ऐसा योग देते कि भाव में और भी गहराई आ जाती।"१

1.1 निराला की संगीत संबन्धी मान्यताएँः-

निरालाजी गीत सृष्टि को शाश्वत मानते हैं और उन्होंने समस्त शब्दों का मूलकारण, ध्वनिमय ओंकार को ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार "स्वर-संगीत स्वयं आनन्द है।

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा-'निराला की साहित्य साधना' (भाग-1) पृ. 262

आनन्द ही इसकी उत्पत्ति, स्थिति और परिसमाप्ति है।"[1] वे यह भी स्वीकार करते हैं कि भारतीय संगीत का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप वैदिक ऋचाओं में पाया जाता है- "आर्यजाति का सामवेद संगीत केलिए प्रसिद्ध है, यों इस जाति ने वेदों में जो कुछ भी कहा, भावमय संगीत कहा है। संगीत का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों में प्रतिष्ठित है। ...भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झंकार और भी कही हैं, मुझे नहीं मालूम। स्वर के साथ शब्द, भाव और छन्द तीनों मुक्त है।"[2] उनकी मान्यता है कि संगीत वेदों से संस्कृत में आकर छन्द-ताल-वाद्य आदि में बँध गया। और पहले मात्र ऋषि-कण्ठ से निकलता हुआ संगीत बाद में जनसमुदाय के आनन्द का प्रजनक हुआ। समय के भाव और रूप को समझकर राग और रागिनियाँ निर्मित होने लगी। उनके अनुसार आज भारत में जिस प्राचीन संगीत की शिक्षा प्रचलित है उसकी बुनियाद यही संस्कृत काल है। इससे स्पष्ट है कि वे मूल संस्कृति या परंपरा से विच्छिन्न नहीं है। अपने काव्य में संगीत के नवीन रूप का सामावेश करके उन्होंने अपने प्राचीन उत्कृष्ट परंपराओं का उदात्तीकरण किया है। मुसलमानों के काल में भिन्न-भिन्न तानें, उससे संबन्धित घराने और स्वर भी अनेक निर्मित हुए। यह सब कला के विकास केलिए कहा गया हैं। लेकिन निराला का मत है कि किसी भी विद्या में जब इतने अधिक भेदोपभेद आ जाते है, इतनी रूपमयता आ जाती है तब वह ह्रासोन्मुख हो जाती है। निराला की इस दृष्टि में सत्य की बड़ी मात्रा पाई जाती है - "तानों के भार से संगीत क्षीण वृन्त पर खुला पुष्प-शरीर झुकता गया।"[3] निराला संगीत की इस तान बहुल स्थिति से बिल्कुल सन्तुष्ट नहीं थे।

हिन्दी के पुराने कवियों - कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि - की खूबियों को मानते हूए भी आधुनिक दृष्टि से उनके पदो में जो दोष हैं उसपर वे अपनी असन्तुष्टि को व्यक्त करते हैं।

---

1. *निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 7*
2. *वही*
3. *वही पृ. 8*

आधुनिक युग में आकर भारतीय संगीत पर पश्चिमी प्रभाव पड़ने लगा। निराला इस प्रभाव को बुरा नहीं मानते कि - "पश्चिम की एक दूसरी सभ्यता देश में प्रतिष्ठित हुई। इसका प्रभाव हर तरह बुरा रहा ऐसा कोई समझदार नहीं कह सकता।"[1] परन्तु वे भारतीय संगीत की राष्ट्रीय परंपरा के पोषक है और उन्हें इस बात का खेद है कि पश्चिम का समाज भारतीय संगीत का यथार्थ आकलन और आस्वादन करने में अक्षम रहा है। उनके अनुसार इसका मूल कारण पश्चिम की अपनी सांस्कृतिक दृष्टि है। पश्चिमी समाज अधिक स्वच्छन्दता प्रिय है। उनकी मान्यता है कि वर्तमान युग में पश्चिमी संगीत के मिश्रण से भारतीय काव्य-संगीत का एक नया रूप विकासित हो रहा है। निराला के गीत को इसी विकासमान परंपरा की एक सशक्त कड़ी के रूप में देखे और परखे जा सकते हैं। गीतों के निर्माण में निरालाजी ने पश्चिमी संगीत की भूमिकाएँ भी अपनाई है। इस सन्दर्भ में शुक्लजी द्वारा उन पर लगाए गए आरोप और निरालाजी की मान्यताओं द्वारा उसके निराकरण पर दृष्टि डालना सन्दर्भोचित होगा।

आचार्यशुक्ल ने कहा है कि "जैसे और सब बातों की, वैसी ही संगीत के अंग्रेज़ी ढंग की नकल पहले पहल बंगाल में शुरू हुई। इस नए ढंग की ओर निरालाजी सबसे अधिक आकर्षित हुए और अपने गीतों में इन्होंने इसका पूरा जौहर दिखाया।"[2]

यह सच है कि बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के संगीत का प्रभाव निराला पर पड़ा है। शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्रारंभिक जीवन में उन्होंने पाई भी। 'महाकवि निराला और राम की शक्तिपूजा' नामक ग्रंथ में बताया गया है कि "बंगला-रवीन्द्र संगीत से उनका खास परिचय था।"[3] मगर यह कहना संगत नहीं है कि निराला ने अंग्रेज़ी और बंगला के संगीत के

---

1. *निराला - 'गीतिका' की भूमिका पृ. 10*
2. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ. 68*
3. *श्याम कपूर-'महाकवि निराला और रामकी शक्तिपूजा' पृ. 23*

अनुकरण पर ज़्यादा ध्यान दिया है। वैसे भी दो संस्कृतियों के मिलन से विशेषताओं का कुछ-न-कुछ पारस्परिक आदान - प्रदान संभव एवं स्वाभाविक है। और यही बात निराला में भी दिखाई पड़ती है, न कि उन्होंने उसका कोरा अनुकरण किया है। अगर उनका संगीत पाश्चात्य संगीत का कोरा अनुकरण होता तो वह अपना अस्तित्त्व ही खो देता। मगर ऐसा हुआ ही नहीं।इस सन्दर्भ में आधुनिक भारतीय संगीतकार श्री रविशंकर जी का कथन यहाँ उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है - "भारतीय संगीत और पाश्चात्य संगीत में ज़मीन आसमान का अन्तर है (दोनों का एप्रोच अलग है) प्रकृति अलग है। हमारा संगीत सुर प्रधान है जबकि पश्चिम का संगीत हारमॉनी प्रधान। दोनों का ताल-मेल, तेल-पानी की तरह संभव नहीं। ऐसी खिचड़ी से दोनों ही अपने-अपने विशिष्ट गुण खो बैठेंगे।"[1]

'गीतिका' की भूमिका में उन्होंने कहा है कि "अंग्रेज़ी संगीत से प्रभावित होने के ये मानी नहीं कि उसकी हूबहू नकल की गई। अंग्रेज़ी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी यह सन्दिग्ध है। कारण, भारतीय संगीत की स्वर मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं वे अंग्रेज़ी संगीत में लगते हैं। ....अस्तु अंग्रेज़ी संगीत के नाम से जो कुछ लिया गया उसे हम अंग्रेज़ी संगीत का ढंग कह सकते है। स्वर मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही।"[2] भारतीय संगीतज्ञ अपनी पद्धति के वैज्ञानिक आधार और संभावनाओं को समझें और पाश्चात्य पद्धति के सिद्धान्तों को भी निष्पक्ष भाव से जानने की चेष्टा करें तो भारतीय संगीत में नई भावना और नई प्रगति आ सकती है। निरालाजी ने ऐसा ही महान कार्य किया है।

एक युग दृष्टा साहित्यिक एवं संगीतज्ञ होने के नाते उन्होंने अपने साहित्य एवं संगीत में कुछ न्यूनताएँ तथा आंग्ल साहित्य और संगीत में कुछ विशेषताओं का अनुभव

---

1. धर्मयुग - नवंबर-1 (1964) रविशंकर एक स्वप्न द्रष्टा।

2. निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 10

किया था और अच्छे अंशों को अपनाकर हिन्दी काव्य संगीत को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। यह और तथ्य है कि तत्कालीन समय में निराला के गीत अधिक प्रचलित या लोकप्रिय नहीं हुए। मगर इसकेलिए वे अकेले उत्तर दायी नहीं है। वे बंगला संगीत से विशेष प्रभावित थे, और बंगला संगीत पश्चिमी संगीत से रूपायित एक नई संगीत पद्धति है। अतः निरालाजी प्राचीन भारतीय और बंगला संगीत के योग से एक नये प्रकार के संगीत को लोकप्रिय बनाने की बात सोचते थे। उनकी गीत-रचना के पीछे यह लक्ष्य था। मगर तत्कालीन सन्दर्भ में इसप्रकार के पश्चिमी प्रभाव को अपनाने केलिए तैयार नहीं थे। शुक्लजी का पूर्वसूचित आरोप इसी का द्योतक है। मगर बाद में इस दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आ गए। भारतीय संगीत जो कभी ऋषि-कण्ठ की निधि थी, काल प्रवाह के साथ वह गायक-कण्ठ की वस्तु बन गया जो आश्रयदाताओं को खुश करने के काम आने लगा। फलतः उसकी शक्ति क्षीण हो गयी। निराला इस तथ्य से पूरी तरह अवगत होकर नए संगीत के निर्माण में प्रयत्नशील रहे। और एक कारण है कि वे स्वयं इन गीतों की स्वर लिपि बनाना चाहते थे, किन्तु वह कार्य संपन्न नहीं हो सका। 'गीतिका' की भूमिका में इसकी प्रतिकूल अवस्थाओं का परिचय मिलता है। ".....गीतों की स्वरलिपि मैं स्वयं करना चाहता था, पर कुछ ऐसी परिस्थिति मेरी रही कि सब तरफ से अभाव ही अभाव का सामना मुझे करना पड़ा। एक अच्छे हारमोनियम की गुँजाइश भी मेरेलिए नहीं हुई।"[1] इससे व्यंजित हो जाता है कि अगर उन्हें आवश्यक सामग्री होती तो वे स्वयं गीतों की स्वर लिपि कर लेते और उनके गीतों की लोकप्रियता बढ़ जाती। इन सब कारणों से उनके गीत अधिक प्रचलित नहीं हुए।

उनके गीतों पर यह आरोप भी लगाया गया है कि वे गाए नहीं जा सकते। इस आरोप को थोड़े अंश तक स्वीकारा भी है कि "..... पर यह निश्चय है कि व्रजभाषा के पद गाने वालों केलिए साफ उच्चारण के साथ इन गीतों को गाना असंभव है। ....पर मैं उन न-

1. निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 18

गा-सकनेवाले गायकों की अक्षमता का कारण पहले ही समझ चुका था। उनमें कुछ आधुनिक विद्यार्थी भी थे। मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह व्रजभाषा में नहीं। व्रजभाषा का पद गानेवाले उस्ताद, प्राचीन उत्तरी संगीत स्कूल के कलावन्त, जिन्हें खड़ीबोली का बहुत साधारण ज्ञान है, मेरे गीत गा न सकेंगे यह मैं जानता था।"[1] इस प्रकार व्रजभाषा से खड़ीबोली में संगीत का यह तुरन्त बदलाव साधारण जनता केलिए अस्वीकार्य था। और एक बात का भी उल्लेख उन्होंने किया है कि "गीता पर राग-रागिनी का उल्लेख मैंने नहीं किया। कारण गीत हर एक राग-रागिनी में गाया जा सकता है।"[2]

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वरविधान राग बद्ध होता है और उन रागों में उनसे लयगत साम्यवाले सभी गीत गाए जा सकते है। भारतीय संगीत की इसी उदारता और विस्तार के कारण हमारे देश में काव्य और संगीत का संबन्ध बहुत घनिष्ठ रहा है। भारत में वही कविता जीवित रह सकती है, जो गेय हो अर्थात् जिसमें छान्दसिकता और लयात्मकता हो।

निरालाजी ने जानबूझकर गीतों को संगीत में ढालने की प्रक्रिया का प्रयोग नहीं किया है। वे अपने गीतों की रचना द्वारा यह सिद्ध कर देना चाहते हैं कि खड़ीबोली में भी वह स्वरमाधुर्य, वह शब्द-लास्य विद्यमान है जिसे शास्त्रीय संगीत में ढाला जा सकता है। उनका मुख्य उद्देश्य हिन्दी खड़ीबोली की असंगीतात्मकता के लाञ्छन को बेबुनियाद करना मात्र है। अतएव निराला के सामने समस्या, अपने गीतों को लेकर सुरों के प्रयोग की नहीं, बल्कि शास्त्रीयता के कुशल निर्वाह की है। इसप्रकार उन्होंने अपने पूर्ववर्ती संगीत प्रयोग से अलग होकर नवीन, मौलिक और प्रभावशाली दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। वे माँ सरस्वती से इसकेलिए प्रार्थना करते है कि,...

---

1. निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 18

2. वही पृ. 17

"वर दे वीणावादिनी वरदे
प्रिय स्वतन्त्र-रव, अमृत-मन्त्र नव भारत में भर दे।
.....
नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव
नवल कण्ठ नव जलद-मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर नव स्वर दे।"[1]

इस नयेपन को लाने में उन्होंने अन्य प्रकार के गीत का भी सहारा लिया है। 'निराला की संगीत साधना' में कहा गया है कि "निराला के काव्य में जहाँ भारतीय शास्त्रीय संगीत-सरिता प्रवाहित है, वहाँ लोक-संगीत, पश्चिमी (अंग्रेज़ी ढंग का) संगीत, बंगला एवं उर्दू भाषा की संगीत धाराएँ मन्द्र स्वर की गति से उसमें आकर मिलती हुई दिखाई देती है।"२ यह मिश्रण उनके नवीन दृष्टिकोण का परिचायक है। इसके अलावा उन्होंने संगीत की विभिन्न शैलियों का भी प्रयोग किया है।

इसप्रकार हम समझ सकते है कि निरालाजी को संगीत संबन्धी अपनी मान्यताएँ हैं और आगे चलकर देखेंगे कि उनकी मान्यताएँ उनके काव्य में कहाँ तक उद्घाटित होती हैं।

1.2 निराला - काव्य में संगीत का स्थानः-

निराला के काव्य में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य में संगीत का समायोग या तो आन्तरिक या फिर आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संगीत के रूप में रहा करता है। इस दृष्टि से आधुनिक कविता आन्तरिक संगीत से युक्त है और निराला के काव्य में संगीत दूसरे प्रकार के है अर्थात् आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के हैं।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 210-211*
2. *डेज़ी वालिया - 'निराला की संगीत साधना' - पृ. 78*

किसी तरह कविता को पढ़कर सुनाना एक बात है और उसे संगीतकला के माध्यम से प्रस्तुत करना और स्वीकृत करना राग रागिनियों में उन्हें बाँधकर प्रस्तुत करना दूसरी बात है। जहाँ काव्य के सन्दर्भ में चर्चा की जाती है, वहाँ संगीत उसका अंग बनकर ही आ सकता है, इसलिए हमारा प्रयोजन केवल संगीतशास्त्र से नहीं सध सकता। काव्य की भूमिका पर संगीत का प्रवेश जिस भाव या रस की दृष्टि में सहायक होता है, हमारा प्रयोजन उसी संगीत से है। 'मेरे गीत और कला' में निराला ने स्वीकार भी किया है कि "मेरा गाना भी कविता का ही गाना है। गीत तो मैंने अलग लिखे हैं।"[1] इस दृष्टि से देखें तो यह मान सकते हैं कि निराला-काव्य में भी संगीत का यही स्थान है।

साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपना सर्वथा मौलिक और नवीन पथ प्रशस्त किया, वही संगीत के क्षेत्र में भी प्रकट हुआ। 'गीतिका' में उनका यही रूप सर्वोपरि है।

1.3 निराला और उनकी 'गीतिका' :-

संगीतात्मकता की दृष्टि से निराला की रचनाओं में सबसे श्रेष्ठ है 'गीतिका'। इसमें निराला ने जहाँ शास्त्रीय संगीत की अनेक रुढियों को तोड़कर उसमें आधुनिकता का समावेश करने का प्रयास किया है वहीं उसमें उदात्त काव्यात्मकता की सन्निहति की व्यवस्था भी की है। इसकी रचनाओं द्वारा उन्होंने यह घोषित किया है कि खड़ीबोली में कविता के अनुभव को प्रायः अक्षत रखते हुए संगीत शास्त्रानुमोदित गीतों की सृष्टि हो सकती हैं। 'गीतिका' की भूमिका में उन्होंने कहा है कि "मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह व्रजभाषा में नहीं।"[2]

निरालाजी का काव्य-संगीत प्रधान तो हैं, मगर उन्हें तानसेन, बैजू आदि की कोटि में नहीं रख सकते। उनके गीतों के समान रूढ़ राग-रागिनियों में निराला के गीत आबद्ध नहीं

---

1. *निराला - 'मेरे गीत और कला' - पृ. 395*
2. *निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 18*

है। मध्यकालीन व्रजभाषा काव्य में संगीततत्त्व को साधन न मानकर साध्य माना। अर्थात् बाह्य संगीत को ऊपर से थोपा गया था। इसिलिए उसमें काव्यात्मकता की कमी अनुभव होती है। इस ओर संकेत करते हुए निराला ने कहा है कि "प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा केलिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था।.... मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।"[1] स्पष्ट है कि संगीत की रक्षा केलिए काव्य की हत्या करना उन्हें स्वीकार्य नहीं है। साथ ही साथ उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती काव्य संबन्धी न्यूनताओं को मिटाने की भी कोशिश की है। भाषा की साहित्यिकता एवं अर्थ की गंभीरता तथा संगीत विधान 'गीतिका' के पदों की विशेषता है। इन तीनों का अद्‌भूत संयोग ही निरालाजी की कला का स्पष्ट निदर्शन है। इसके बावजूद भी इसपर कई आरोप लगाए गए हैं। डॉ. नामवर सिंह का यह आरोप है कि "'गीतिका' के अधिकांश गीत संगीत को ध्यान में रखकर लिखे जाने के कारण प्रगीत के गौरवपूर्ण पद से हटकर संगीत के आसन पर चले गए हैं।"[2] यह आरोप नितान्त असंगत है। सच पूछिए तो "संगीत और उसमें भी अपने गीतों के सहारे किसी नये ढंग के संगीत का आविर्भाव निराला का मूल उद्देश्य नहीं है। उनका मुख्य उद्देश्य तो हिन्दी-खड़ीबोली कविता पर आरोपित असंगीतात्मकता के लांछन का प्रक्षालन-भर है।"[3] 'व्रजभाषा के समान खड़ीबोली में संगीत का विधान संभव नहीं है' - ऐसा एक विचार प्रचलित था, जिसको गलत साबित करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। फिर भी उसमें कभी-कभी व्रजभाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है। यह स्वाभाविक है क्योंकि सांगीतिक दृष्टि से भी आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की भाषा व्रजभाषा ही है।

---

1. *निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 12*
2. *डॉ. उदय भानु सिंह - 'डॉ. नामवर सिंह : रूप विन्यास और छन्द' - पृ. 162*
3. *दूधनाथ सिंह - 'निराला आत्महन्ता आस्था' - पृ. 101*

जयशंकर प्रसाद ने निराला के गीतों का सही मूल्यांकन किया। उन्होंने लिखा है, "निरालाजी हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि है; और साथ ही भारती मन्दिर के गायक भी हैं। उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, अपितु उनकी 'गीतिका' में सब स्वरों का समारोह है, ...'गीतिका' हिन्दी केलिए सुन्दर उपहार है।"[1]

निष्कर्षतः 'गीतिका' निराला की ही नहीं बल्कि पूरे छायावादी युग की प्रतिनिधि रचना है। 'अर्चना' और 'आराधना' में जो तन्मयता दिखाई देती है उसके मूल में संगीत का समावेश मुख्य है।

'गीतिका' के अलावा अन्य संकलनों में भी शास्त्रीय संगीत का प्रयोग मिलते हैं। 'सांध्यकाकली' में संकलित 'ताक कमसिन वारि' निराला की 'क्लासिकी संगीत' रचना है। शास्त्रीय संगीत ध्वनि प्रधान है, न कि शब्द-प्रधान। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इसमें शब्दों का महत्त्व नहीं है। इसमें महत्त्व ध्वनि का अधिक होता है, उसके चढ़ाव उतार का; शब्द और अर्थ का कम-

"ताक कमसिन वारि
ताक कमसिन वारि
ताक कम सिन वारि
सिनवारि, सिनवारि।
ता मकमसि नवारि,
ताक कमसि नवारि
ताक कमसिन वारि
कमसिन कमसिनवारि।"[2]

---

1. *प्रसाद - 'गीतिका' की भूमिका पृ. 1*
2. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'सांध्यकाकली' पृ. 489*

इन पक्तियों में संपूर्ण रूप से शास्त्रीय पद्धति का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्द या अर्थ की कोई महत्ता नहीं है ध्वनि और उसका उतार-चढ़ाव ही इसमें मुख्य है।

डॉ. रामविलासशर्मा ने कहा है कि "बादलों को देखकर निराला की पुरानी बंदिशों याद आती है, जैसी उन्होंने लड़कपन में महिषादल में सुनी थी"[1] -

"धिक मद गरजे बदरवा,
चमकि, बिजुली डरपावे,
सुहावे सघन झर, नरवा
कगरवा-कगरवा।"[2]

ये पंक्तियाँ व्रजभाषा में रची हुई है। इसमें शास्त्रीय पद्धति का पूर्णतः पालन हुआ है।

काव्य में शास्त्रीय संगीत के साथ आन्तरिक संगीत की भी रक्षा ही निराला की विशेष उपलब्धि हैं। यदि स्वर विस्तार के साथ भाव और काव्य की भी रक्षा हो सके तो वह एक अनुपम उपलब्धि मानी जानी चाहिए। गायन के साथ वहाँ भावविस्तार का भी उच्च स्थान है। काव्यगत अन्तःसंगीत ही काव्य के वातावरण को सम्मुख लाता है। मुक्तछन्दों में तो आन्तरिक संगीत ही प्रबल है। 'जुही की कली', 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'बादल राग', 'जागे फिर एक बार', 'आधिवास', 'वृत्ति' जैसे काव्यों में जो संगीत है वह आन्तरिक लय से उद्‌भूत होती है।

'तुलसीदास' मुक्तछन्द में लिखी गई है। पंक्तियों की धीरे-धीरे बढ़ती हुई लंबाई, मानसिक उत्तेजना के प्रभाव को तीव्र करती है। इसप्रकार उसमें लयों का सन्निवेश हुआ है। साथ में ध्वनियों के मिलाप से संगीतात्मकता आ गई है। उदाहरण केलिए -

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा - 'राग-विराग' की भूमिका (भाग-1) पृ. 38

2. निराला रचनावली (भाग-2) - 'सांध्यकाकली' पृ. 489

"धिक धाये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ-हाड चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये।"[1]

काव्यगत संगीत केलिए स्वर, लय और नाद की संहिति इस ढंग से होनी चाहिए कि काव्य के पठन-मात्र से अर्थपूर्ण संयमित ध्वनि व्यक्त हो सके। 'राम की शक्तिपूजा' से उदाहरण है-

"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
.....
लौटे युग-दल राक्षस-पतदल पृथ्वी टलमल
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल"[2]

दोनों का छन्द एक है पर संगीत भिन्न-भिन्न। एक का संगीत युद्धपरक वातावरण उत्पन्न कर रहा है तो दूसरे का ग्लानि-क्षोभ। प्रथम उद्धरण के स्वर में जो प्रखरता, लय में वीर भाव और नाद परिवेश दिखाई देता है वह दूसरे में नहीं है। दूसरे उद्धरण का स्वर अवसादमूलक, लय विषादात्मक और याद खिन्नतापरक है।

निराला की कविताओं में 'मौन' या 'चुप्पी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उस मौन से भी संगीत की अभिव्यंजना होती है-

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'अनामिका' पृ. 286*
2. *वही पृ. 310-311*

"कह हुए मौन शिव; पवन-तनय में भर विस्मय

.....

मौन में रह यों स्पन्दित वातावरण विषम।"[1]

पहले उदाहरण में 'कहे हुए मौन' का प्रयोग और दूसरी में 'मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण' का प्रयोग उपर्युक्त बात को सिद्ध कर देते हैं। निर्मल वर्मा के शब्दों में "संगीत, हमारे भीतर की चुप्पी को बिना कोई समझौता किए सबसे ज़्यादा अभिव्यक्त करता है, बल्कि चुप्पी का रूप अगर सबसे ज़्यादा किसी चीज़ के निकट आता है तो वह चीज़ संगीत है।"[2]

कवि के अन्तर्मन को अभिव्यक्त करने में संगीत का महत्त्वपूर्ण योगादान है। काव्यगत या आन्तरिक संगीत की पुष्टि इसमें हुई है। 'राम की शक्तिपूजा' की एक बहुत बड़ी विशेषता है भावों का आरोह और अवरोह।

काव्य और संगीत का सुन्दर सामंजस्य निम्नलिखित पंक्तियों में मिलते हैं-

"वारि वन वनवारि,
वनवारि वनवारि।
वारिज विपुलवारि
पुलवारि कुलवारि
द्रुमलता तुलवारि
कूल कलि कुलवारि
आकुल मुकुल वारि
विहग संकुल वारि।"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 314-315*
2. *निर्मल वर्मा - 'मेरे साक्षात्कार' पृ. 12*
3. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'सांध्यकाकली' पृ. 468*

शास्त्रीय संगीत के नियोजन के बावजूद भी इस गीत का भाव बाधित नहीं हुई है और न ही काव्यत्व के कारण संगीतात्मक। निर्मल वर्मा के अनुसार, "निराला के काव्य पर संगीत का प्रभाव पड़ा है। निराला शास्त्रीय संगीत के बहुत अच्छे ज्ञाता भी थे और ज्ञाता ही नहीं थे उनका, संगीत के सुर, लय, परिकल्पना से गहरा संवेदनात्मक संबन्ध भी था।"[1]

शास्त्रीय पद्धति के साथ-साथ आन्तरिक संगीत के प्रयोग में भी निराला सफल बन पाए हैं।

पारिभाषिक शब्दावली को संगीत में एक आवश्यक तत्त्व माना है। निराला की अनेक रचनाओं में संगीत से संबन्ध शब्दावली का उल्लेख मिलता है जिससे उनके शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता है।

1.4 निराला - काव्य में संगीत-तत्त्वों का प्रयोग :-

निरालाजी संगीतज्ञ एवं संगीतकार होने के कारण संगीत की गहराइयों से भली भाँति परिचित थे। बाह्य संगीत एवं आन्तरिक संगीत के अलावा संगीत की परिभाषिक शब्दावलियों के प्रयोग से भी सांगीतिक परिवेश को रूपायित किया गया है। उनके गीतों में संगीत के तत्त्वों को थोपा नहीं गया है; अपितु रागात्मक अनुभूतियों से समन्वित होने के कारण उनमें संगीतात्मकता स्वयमेव झलकती दिखाई देती है।

सप्तस्वरों के आरोह-अवरोह, इमन (यमन एक रागिनी), राग-रागिनी, स्वर, सरगम, तान, मूर्च्छना, मींड आदि तत्त्वों से निरालाजी ने अपने काव्य में संगीतात्मकता लाई है। सप्त स्वरों, और आरोह-अवरोह,तथा इमन शब्द का प्रयोग-

---

1. निर्मल वर्मा 'दस्तावेज़' अंक 84 जुलाई / सितंबर - पृ. 40

"इमन बजा
स, रि, ग, म, प, ध, नि, स, सजा सजा।
एक पहर बीती रजनी।"[1]

इस गीत की आरंभिक पंक्तियों को शुद्ध संगीतात्मक बिंब के रूप में प्रस्तुत किया गया है। स, रि, ग, म, प, ध, नि संगीत के आधारभूत सप्तस्वरों से ही शुरुआत हुई है। 'इमन' (यमन) रागिनी का भी उल्लेख किया गया है।

आरोह-अवरोह का प्रयोग दे खिए -

"मुक्त! तुम्हारे मुक्त कण्ठ में,
स्वरारोह अवरोह विघात"[2]

राग-रागिनी-शब्द का, अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। साहित्यिक और संगीतात्मक दोनों दृष्टियों से प्रायः 'राग' का प्रयोग होता है। साहित्यिक दृष्टि से इस शब्द का अर्थ सुख दुःख अथवा आह्लाद विषाद को प्रकट करनेवाला भाव है जो मन का रंजन करता है। इस दृष्टि से राग का प्रयोग-

"नाचता पलकों पर आलोक
किसी का, हर कर उर का शोक,
देखता मैं अरोक मन रोक
उमड़ पड़ते हैं सौ - सौ राग।"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'सांध्यकाकली' पृ. 473*
2. *वही (भाग-1) 'परिमल' पृ. 122*
3. *वही 'गीतिका' पृ. 258*

संगीतात्मक दृष्टि से 'राग' एक परिभाषिक शब्द है जो स्वर तथा वर्ण से विभूषित होकर उस संगीतात्मक ध्वनि को इंगित करता है जो जन-चित्त-रंजन में समर्थ है। निराला ने इसका प्रयोग कई स्थलों पर किया है-

"पारिजात पुष्प के नीचे बैठ सुनोगो तुम
कोमल कण्ठ, कामिनी की सुधा भरी आसावरी"[1]

'आसावरी' राग द्वारा स्थूलतः श्रृंगार या शान्त रस की भावनाओं का प्रस्फुटन होता है। इस बात को बिना जाने इस सन्दर्भ में उपर्युक्त राग का प्रयोग करना कठिन है।

स्वर :- स्वर भी संगीत का एक परिभाषिक शब्द है। निराला ने अनेक बार इसका प्रयोग किया है-

"प्रिय मौन एक संगीत भरा
नवजीवन के स्वर पर उतरा।"[2]

इन पंक्तियों में स्वर को जीवन से जोड़कर प्रस्तुत किया है। संगीतशास्त्र की दृष्टि से पंचम स्वर का पर्याप्त महत्त्व है। सामान्य रूप से कोकिल की आवाज़ से इसकी तुलना किया जाता है-

"मधुप - वृन्द बन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया।"[3]

सरगम :- संगीतशास्त्र में 'सरगम' का सर्वाधिक महत्त्व है। भारतीय संगीत का आधार ही सरगम है। निरालाजी ने 'सरगम' शब्द के प्रयोग द्वारा संगीतात्मक प्रक्रियाओं की कल्पना,

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल पृ.' 50*
2. *वही 'अनामिका' पृ. 304*
3. *वही पृ. 239*

प्रकृति के क्रियाकल्पाओं पर आरोपित करके नैसर्गिक संगीत की पद-पद पर कल्पना और पुष्टि की गई है-

"और देखूँगा देते ताल
कर-तल-पल्लव-दल से निर्जन वन के सभी तमाल
निर्झर के झर-झर स्वर में तू सरिगम मुझे सुना मा,
एक बार बस और नाच तू श्यामा।"[1]

तान :- रागों के स्वल्प स्वरूप को तानने, विस्तृत करने तथा फैलाने को तान कहते हैं। 'तानों' के प्रयोग से एक ओर तो संगीत के क्षेत्र में चमत्कार पक्ष का उत्कर्ष स्थापित होता है और दूसरी ओर भावसिक्त कोमल मधुरतानों के सन्निवेश से भावाभिव्यक्ति का उत्कर्ष हो जाता है-

"जगत्-उर की गत अभिलाषा,
शिथिल तन्त्री की सोई तान"[2]
* * * * * * * * *
वह आज हो गयी दुर तान"[3]

इन पंक्तियों में 'तान' गवैयों की वह तान नहीं है जिसे वे 'सरल तान', 'फिरतान' 'कुटतान', 'आलंकारिक तान' जैसे नामों से अभिहित किया करते हैं। शुद्ध सांगीतिक अर्थ में भी तान शब्द का प्रयोग निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 74*
2. *वही पृ. 130*
3. *वही 'अनामिका' पृ. 283*

"कमलासन पर बैठ, प्रभा-तन,
वीणा-कर करती स्वर-साधन,
अंगुलि-घात गुँजा मृदु गुंजन
भर देती शत गान, तान तुम।"[1]

मूर्च्छना :- संगीत के मूर्च्छना जैसे जटिल पारिभाषिक शब्द का भी निराला जी ने अपने काव्य में सफल एवं सान्दर्भिक प्रयोग किया है। सात स्वरों के क्रमशः आरोह-अवरोह को 'मूर्च्छना' कहते हैं। निराला द्वारा 'मूर्च्छना' शब्द का प्रयोग उनकी विलक्षण बुद्धि का प्रतीक है-

"स्वर हिलोरें ले रहा आकाश में,
काँपती है वायु स्वर-उच्छ्वास में ,
ताल-मात्राएँ दिखाती भंग, नव गति रंग भी
मूर्च्छित हुए से मूर्च्छना करती उठाकर प्रेम छल"[2]

मींड़ :- 'मूर्च्छना' के ही समान संगीत का एक अन्य परिभाषिक शब्द है 'मीड़' जो छायावादी प्रगीतकार द्वारा अनेक स्थलों पर व्यवहृत किया गया है। यह उस क्रिया को कहते हैं जिसमें एक स्वर दूसरे स्वर तक अखण्डित रूप से खींच जाता है, दो स्वरों को इस तरह से जोड़ा जाता है कि दोनों स्वर अलग होने पर दोनों की ध्वनियों में अलगाव नहीं रहता। निराला ने इस शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों में किया हैं-

"....शब्द के कलि-दल खुलें,
गति-पवन भर काँप थर-थर
मीड़ भ्रमरावलि ढुलें,

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 224*
2. *वही (भाग-2) 'अनामिका' पृ. 283*

गीत परिमल वहें निर्मल,

फिर बहार, बहार हो।"[1]

* * * * * * *

"मींड मधुरतम, विधुर इमन की"[2]

इसप्रकार निराला ने अपनी कविताओं में संगीतात्मक तत्त्वों का सफल प्रयोग किया है। संगीतात्मक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में भी मिलता है, परन्तु निराला द्वारा इसका प्रयोग विस्तृत और सर्वाधिक श्रेष्ठ है। उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति के अनुसार ही संगीतात्मक तत्त्वों का प्रयोग किया है।

1.5 निरालाकाव्य में छन्दविधान और तुकांतता :-

काव्य और संगीत को परस्पर मिलाने वाला प्रमुख तत्त्व है छन्द। इसका संगीतशास्त्र से घनिष्ठ संबन्ध है। छन्द की महत्ता को प्रस्तुत करते हुए रामदहिन मिश्र ने कहा है, "छन्द-बन्धन के सर्वथा त्याग से हमें तो अनुभूत नादसौंदर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई पड़ता है।"[3] अतः छन्द ही काव्य का संगीत है। "'संगीत' में जो संयम ताल से आता है, वह संयम कविता में छन्द से आता है।"[4] इस प्रकार छन्द अपने मूल रूप में काव्य का संगीतात्मक अनुष्ठान ही है।

निराला की कविताओं में भावगत नवीनता के साथ-साथ छन्दगत नवीनता का भी समावेश हुआ है। उन्होंने हिन्दी काव्य की मुक्ति केलिए दो उपाय प्रस्तुत किए -"एक वर्णवृत्त

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 324*
2. *वही (भाग-2) 'गीतगुंज' पृ. 452*
3. *रामदहिन मिश्र - 'काव्य दर्पण' - पृ. 40*
4. *वही*

में दूसरा मात्रावृत्त में। 'जुही की कली' का आधार वर्णवृत्त है। इसमें अंत्यानुप्रास नहीं। यह गायी नहीं जाती। इससे पढ़ने की कला व्यक्त हो जाती है। 'परिमल' के तीसरे खण्ड में इस तरह की रचनाएँ हैं। दूसरी मात्रावृत्तवाली रचनाएँ 'परिमल' के दूसरे खण्ड में है। इनमें लडियाँ असमान है, पर अंत्यानुप्रास है। आधार मात्रिक होने के कारण गाई जा सकती है।"[1] यों मात्रिक छन्दवाली कविताओं में संगीत का समावेश करना आसान है। मुक्तछन्द में लय से संगीत की उत्पत्ति होती है और यह आन्तरिक संगीत को ही प्रश्रय देता है।

निरालाजी को निर्धारित छन्द बन्धन स्वीकार्य नहीं थे। परन्तु वे यह मानते हैं कि उनका छन्द चाहे कितना ही स्वच्छन्द हो किन्तु वहाँ भी एक तारतम्य है, संगीत है,लय है। ये ही तत्त्व उसे स्वच्छन्द होते हुए भी 'बन्ध' रूप देता है। 'जुही की कली' में निराला ने पहली बार मुक्तछन्द का प्रयोग किया। उनके अनुसार "मुक्तछन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है। उसमें कोई नियम नहीं है उसका समर्थक प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है।"[2] इसकी विशेषता है ध्वनियों का सफल और सामंजस्यपूर्ण मेल, अपने ढंग की लय, जो कविता को सरलता, संगीतात्मकता, गेयता और अभिव्यक्तिशीलता प्रदान करती है।

छन्दों का जो नियम छन्दशास्त्र में उल्लिखित है, उनका पालन मुक्तछन्द में नहीं होता। छन्दों की वर्ण गणना और मात्रा गणना की अनिवार्यता भी इसकेलिए बनी नहीं रहती। किन्तु मुक्तछन्द का मात्र कलेवर ही स्वतन्त्र रहता है, उस आत्मा नहीं। इस छन्द के द्वारा हिन्दी कविता की लय को बोलचाल की भाषा तथा वाद्य की लय के निकट लाना ही उनका प्रयास रहा है। इस छन्द की महत्ता को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामविलासशर्मा ने लिखा है - "मुक्तछन्द की महत्ता इस बात में नहीं है कि वह बन्धनहीन है, पूर्ण ज्ञान या मुक्त भावों का

---

1. *निराला - 'प्रबन्ध पद्म' पृ. 40*
2. *निराला 'परिमल' की भूमिका पृ. 19*

वाहन है, वरन् इसमें है कि उसने मात्रिक छन्द की एकरस लय को भंग किया, वह हिन्दी कविता में बोलचाल की लय की विविधता लाया, उसने भाषा की छिपी हुई शक्ति उद्घाटित की"[2]

इसप्रकार मुक्तछन्द की रचना में भी एक व्यवस्था है और एक नियम है।

'जुही की कली' इसकेलिए उदाहरण है। इसमें न तो संगीत संबन्धी नियमों का पालन हुआ है न ही यह शास्त्रीय संगीत के समान गा भी सकती हैं। अगर इसे शास्त्रीय संगीत का रूप प्रदान करने का प्रयास किया तो उसकी सहज काव्यात्मकता की हत्या होगी। और यह निराला केलिए वांछनीय नहीं है। फिर भी इसमें लयात्मकता है संगीतात्मकता है-

"विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी स्नेह-स्वप्न मग्न
अमल - कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किये शिथिल-पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी;....."[2]

'तोडती पत्थर' से -

"वह तोडती पत्थर।
देखा उसे मैं ने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर ।"[3]

इसप्रकार के कई उदाहरण उनकी रचनाओं में मिलते हैं।

---

1. *डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला की साहित्य साधना' (भाग-१) पृ. 426*
2. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 31*
3. *वही (भाग-2) 'अनामिका' पृ. 323*

कवि अपने भाव के अनुरूप विभिन्न चरणों में मात्राएँ घटा-बढ़ा लेता है,किन्तु अन्त्यानुप्रास (या तुक) अनिवार्यतः रखता है। इससे संगीतात्मकता आ जाती है। 'भिक्षुक' से उदाहरण देखिए -

"वह आता-
दो टूक कलेजे करता पछताता,
पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक"[1]

इसके किसी भी चरण में मात्राओं की सामानता नहीं है। किन्तु प्रथम-द्वितीय; तृतीय-चतुर्थ चरण में अंत्यानुप्रास है, और लय-प्रवाह का कुशल संयोजन है। पहली पंक्ति की तुक की अनुगूँज दूसरी पंक्ति की तुक को अनुगूँज से टकराकर अर्थ को सघन बनाने के साथ ही अनुभूत संगीत की सृष्टि करती है। अनुभूति के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाली अप्रत्याशित तुक,कविता को सजीव और संगीतमय बनाती है।

मुक्तछन्द में रची गई निराला की कविताएँ दो प्रकार की हैं - तुकांत और अतुकांत।

इनमें से तुकांत कविताएं गेय हैं। उन लोगों के अनुसार, जिन्हें निराला को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, कवि स्वयं अपनी कविताओं को बहुत ही अच्छे ढंग से गाते थे। 'राम की शक्तिपूजा', 'जुही की कली', 'तोड़ती पत्थर', 'बादलराग' आदि प्रसिद्ध कविताओं का सस्वर पाठ उन्होंने विभिन्न सन्दर्भों में किया है जिसके कई प्रमाण उपलब्ध हैं। जैसे डॉ.

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 64

रामविलास शर्मा कहते हैं - "भारत-सोवियत-मंत्री-संघ के खुले अधिवेशन (लखनऊ) में निराला ने अपने मन्द्रस्वरो में 'बादल राग' सुनाया।"[1]

महाप्राण निराला द्वारा विख्यात कविता 'राम की शक्तिपूजा' की, कवि सम्मेलन में सफलतापूर्वक प्रस्तुति हुई है जो कि हिन्दी का उत्कृष्ट स्तरीय काव्य है। "'राम की शक्तिपूजा' की सफल प्रस्तुति निराला की प्रभविष्णुता तथा दुर्लभ कवि-कुशलता है। ऐसी विलक्षणता सर्वसुलभ नहीं।"[2]

संक्षेप में रचनाओं का संपूर्ण सस्वर पाठ आसाधारण सफलता है। श्रेष्ठ मूल्यों से संपन्न गीतों का मधुर कण्ठ से पाठ सदैव आकर्षण का केन्द्र रहा है। साहित्य की आदि विधा कविता है, वह कविता जो कण्ठ और श्रुति के बीच बढ़ती हुई हृदय तक पहुँचती है। गेयता, पठनीयता और श्रवणीयता कविता के आद्य गुण है। अतुकांत कविताएँ अगेय हैं और उसमें मात्र पठनीयता संभव है। 'प्रबन्धपद्म' में निराला ने स्वीकारा है कि "स्वच्छन्द छन्द में 'आर्ट ऑफ म्यूज़िक' नहीं मिल सकता वहाँ है 'आर्ट ऑफ रीडिंग', वह स्वर प्रधान नहीं व्यंजन प्रधान है। उसका सौंदर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में हैं।"[3]

मुक्तछन्द में 'आर्ट ऑफ रीडिंग' का समर्थन करते हुए अज्ञेय ने भी लिखा है कि "अच्छा मुक्तक वे लिख सकते हैं जो छन्दों के अनुशासन से गुज़र चुके हैं। छन्दों के अनुशासन से गुज़रकर छन्दों के बन्धन को तोड़ना एक बात है और छन्दों के अनुशासन से अपरिचित रहकर मुक्तछन्द लिखना दूसरी बात है। इसलिए सफल मुक्तछन्द केलिए प्रशिक्षित,

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा - 'निराला' पृ. 175

2. डॉ. रामनरेश - 'हिन्दी की मंचीय कविता' - पृ. 12

3. निराला - 'प्रबन्ध पद्म' पृ. 126

सूक्ष्म श्रुतिक्षमता, और विशिष्ट वाचिक कुशलता अपेक्षित है।"[1] निराला पर यह वक्तव्य अक्षरतः लागू किया जा सकता है।

गीतों की सृष्टि में प्रायः कविगण छन्दों की बार-बार आवृत्ति करते हैं। परन्तु निराला इसके अपवाद है। इसका कारण कदाचित् यह है कि उनके गीतों में शास्त्रीय रागों की कठोरता नहीं है। गायक को स्वतन्त्रता है कि वह किसी भी राग में गीतों को बाँध लें। इसप्रकार वह स्वतन्त्र रूप से गायकों की रुचि के अनुसार चाहे शास्त्रीय रूप या पाठन की शैली में गा सकते हैं। इसी कारण से उसमें काव्यात्मकता भी सुरक्षित है। उनकी रचनाओं में छन्द का पालन भी हुआ है और इससे कविता स्मरणीय वन जाती है। मुक्तछन्द में भी यदि लय का प्रवाह हो तो एक तक स्मरणीयता उसमें भी होती है।

संक्षेप में कविता कामिनी को स्वच्छन्दता देकर आपने उसका स्वाभाविक संगीतमय सौंदर्य उद्‌भाषित करने का प्रयत्न किया है।

1.6 निराला के काव्य में लय और ताल :-

काव्य में संगीतात्मकता लाने केलिए अत्यन्त सहायक तत्त्व है लय और ताल। संगीत के परिभाषिक शब्द होने के बावजूद इसका अलग से अध्ययन ज़रूरी है। कोई भी रचना हो उसकी सार्थकता तभी होती है जब वह आम जनता से जुड़जाती है। आम जनता लयात्मक कविताओं को आसानी से याद कर लेती है और उन्हें अवसर आने पर उद्धृत करती है। भारतीय जीवन गद्यात्मक न होकर लयात्मक है। तो निश्चित है कि भारतीय कविता भी लयात्मक ही है। कविता यदि यथार्थ जीवन को अभिव्यक्ति है तो उसमें जीवन की लय की भी अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

---

1. अज्ञेय - 'काविदृष्टि' पृ. 16

लय, संगीत और काव्य दोनों ही का आधार है। संगीत, स्वर और लय का सुन्दर सामंजस्य है। साहित्य में अक्षरों के क्रमागत नियोजन से जो ध्वनि निःसृत होती है, वह लय है। किसी भी राग का विस्तार करते समय आलाप, तान, बोलतान, सरगम आदि लय पर ही आधारित होता है।

काव्य के क्षेत्र में कविता के छन्दों में जो प्रवाह है अथवा छन्द से रहित होने पर भी कविता में जो प्रवाह होता है वह लय पर ही आधारित है। इससे ही काव्य में एक अर्थपूर्ण और साभिप्राय स्वरूप आता है। कविता की यही अन्तःवर्ती तत्त्व उसे गद्य से पृथक् सिद्ध करता है।

'लय' से निराला का तात्पर्य उस प्रवाह, उस आकर्षण एवं उस तन्मयता से है जो स्वर और लय के सामंजस्य के कारण संगीत में नैसर्गिक रूप में ही परिव्याप्त रहता है। एक आलोचक ने निराला की कला के संबन्ध में लिखा है- "आन्तरिक लय की जितनी सुन्दर परख उनको थी उतनी किसी अन्य कवि की नहीं और अर्थ, ध्वनि तथा लय को सफलतापूर्वक उन्होंने नियोजित किया है।"[1]

तीनों लयों का प्रयोग निराला की रचनाओं में हुआ है। निराला की रचनाओं में विलंबित लय का प्रयोग बहुत कम ही हुआ है-

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे...."[2]

---

1. *डॉ. रामअवध द्विवेदी - 'आज' का निराला स्मृति अंक पृ. 19*
2. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 65*

निराला जी के प्रेम, माधुर्य और श्रृंगार संबन्धी गीतों में मुख्यतः मध्यलय का प्रयोग हुआ है -

"मेरे प्राणों में आओ।
शत-शत, शिथिल, भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ।"[1]

निराला ने अपनी कविताओं में द्रुतलय का भी प्रयोग किया है-

"तुम तुंग - हिमालय-श्रृंग
और मैं चंचल-गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कान्त-कामिनी-कविता।"[2]

अज्ञेय ने कहा है - "निराला संगीत जानते थे और लय का भाव पैदा करने केलिए हमेशा संगीत के स्वर का सहारा लेते थे। छन्द के बन्धन तोड़कर भी निराला संगीत के आकर्षण से सदैव बँधे रहे।"३ इस उद्धरण से स्पष्ट है कि निराला की रचनाओं में 'लय' आद्यन्त विद्यमान है।

महाकवि निराला ने न केवल एक शब्दाकार के रूप में सुन्दरतम, आधुनिक मौलिक गीत दिए अपितु उन्हें शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त अनेक प्रमुख तालों में भी आबद्ध किया जो एक प्रखर प्रतिभाशाली संगीतज्ञ ही कर सकता है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 199*
2. *वही 'परिमल' पृ. 37*
3. *अज्ञेय - 'कवि दृष्टि' - पृ. 17*

संगीत में 'ताल' एक रूढ शब्द है जो लयबद्धता का द्योतक है। संगीत का मुख्य उद्देश्य आनन्द की सृष्टि करना है और संगीत के अभिन्न अंग ताल की उत्पत्ति का कारण भी रंजकता को बढ़ाना है। लय से मात्रा और मात्रा से ताल बनते हैं। छायावादी कवियों में विशेषकर निराला ने काव्य-संगीत में ताल को बहुत प्रधानता दी है। यह शब्द निराला जी को सर्वाधिक प्रिय है। उनकी अधिकांश रचनाओं में इस शब्द का प्रयोग सहज ही हुआ है –

"ताल मात्राएँ दिखाती भंग, नव गति रंग भी"[1]

* * * * * * * * *

"ताल मूर्च्छानाओं सधी"[2]

* * * * * * * * *

"नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव"[3]

* * * * * * * * *

"प्रहर-तरंग-कर-ललित-तरल-ताल।"[4]

* * * * * * * * *

"ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय कपाट"[5]

निरालाजी ने मात्र 'ताल' शब्द का प्रयोग ही नहीं किया है बल्कि स्वयं विभिन्न तालों में अपने प्रगीतों की स्वरलिपियाँ भी दी है जो 'गीतिका' की भूमिका में उपलब्ध है। धमार, रूपक, झपताल, चौताल, तीनताल, आदि उल्लेखनीय तालें हैं।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 83*
2. *वही पृ. 81*
3. *वही (भाग-1) 'गीतिका' पृ. 211*
4. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 344*
5. *वही पृ. 92*

इसप्रकार निराला की रचनाओं में लय और ताल का सफल निर्वाह हुआ है।

1.7 निराला-काव्य में वाद्य संगीत :-

संगीत में वाद्यों का अत्याधिक महत्त्व है। वाद्य के बिना संगीत अधूरा है। निराला इस तथ्य से अनभिज्ञ न थे। उन्होंने अपने काव्य में सांगीतिक वातावरण के निर्माण केलिए कई गीतों में विभिन्न वाद्ययन्त्रों का नामोल्लेख किया है। कहीं पर तो उन्होंने वाद्ययन्त्रों को किसी भावना के प्रतीक स्वरूप प्रस्तुत किया है और कहीं पर केवल संगीतात्मक वातावरण की सर्जना केलिए। उनके काव्य में हमें केवल भारतीय वाद्ययन्त्रों का ही उल्लेख नहीं मिलता अपितु पाश्चात्य वाद्ययन्त्रों का भी अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। निराला ने वीणा को हृदय के रूप में कहीं प्रस्तुत किया है -

"वह रूप जगा उर में
बजी मधुर वीणा जिस सुर में?"[1]

सितार, मिजराव, तानपूरा, वायलिन, सुरबहार तथा बेन्जो जैसे तत वाद्यों, मृदंग, ढोलक, डफतबला आदि वितत वाद्ययन्त्रों का अनेक स्थान पर उल्लेख मिलता है।

सुषिर वाद्यों में छायावादी कवियों ने सबसे अधिक 'वंशी' का प्रयोग किया है। निराला की रचनाओं में मुरली, वेणु, बाँसुरी आदि इसी के पर्यायवाची शब्द है। घण्टा, घण्टी, घड़ियाल, मंजीरा, करताल आदि घन वाद्यों आदि का उल्लेख भी उन्होंने 'राम की शक्ति पूजा', 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाओं में किया है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 205*

1.8 निराला का नृत्य - संबन्धी ज्ञान :-

संगीत, गायन, वादन और नृत्य तीनों के सामंजस्य से बना है और निरालाजी एक प्रवीण संगीतज्ञ हैं। इसकारण से उन्हें नृत्य संबन्धी ज्ञान भी था। उन्होंने 'नृत्य' शब्द का ही नहीं बल्कि नृत्य के विभिन्न प्रकारों और रूपों का भी उल्लेख अपने काव्य में किया है-

".....या कहीं सुन्दर प्रकृति बन-सँवरकर
नृत्य करती नायिका तू चंचला।"[1]

शास्त्रीय नृत्य के दोनों परंपरागत रूपों-ताण्डव और लास्य-का प्रयोग उन्होंने किया हैं-

"तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद ओंकार-सार,
मैं कवि-श्रृंगार शिरोमणि।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाते हैं कि संगीत-तत्त्वों का पूर्ण रूप से निर्वाह निराला ने अपने काव्यों में किया है।

समग्रतः निराला महान संगीतमर्मज्ञ कवि हैं। इसलिए शुक्लजी ने कहा है कि संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। यह मत पूर्णतः सही भी है। उनका काव्य संगीतमय है और संगीत काव्यमय।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 33*
2. *वही पृ. 38*

5 *निराला के काव्य में संगीततत्त्व का विश्लेषण*

निराला जीवन-संगीत के अमर गायक बन जीवन-वीणा के तारों को झंकृत करते रहेंगे। साहित्य संसार में उन्होंने अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। मधुर संगीत के साथ जीवन की आस्था व्यंजित करना निराला के गीतों की विशेषता है। उनके गीत शब्द, स्वर भाव तथा छन्द के मधुर समन्वय हैं। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा संगीत और काव्य के संबन्ध को स्थापित किया।

छठा अध्याय

प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्व का मूल्यांकन

सारांश

"प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व का मूल्यांकन" शीर्षक इस अध्याय में काव्य, ध्वनि और संगीत के पारस्परिक संबन्ध पर प्रकाश डालते हुए पहले काव्यभाषा और संगीत पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि और संगीत को प्रश्रय देने वाले सभी तत्त्वों-नादसौंदर्य, शब्द-युग्मों के प्रयोग, शब्दालंकार योजना, अनुरणनात्मक ध्वनियोजना, छन्दयोजना आदि - को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है और सिद्ध किया है कि दोनों महान कवियों के काव्य, ध्वनि एवं संगीत तत्त्वों से अनुप्राणित है और इन्हीं तत्त्वों के कारण उनके काव्य हिन्दी साहित्य जगत् में हमेशा कालजयी रहेंगे।

छठा अध्याय

प्रसाद और निराला के काव्य में ध्वनि एवं संगीत तत्त्व का मूल्यांकन

ध्वनि, काव्य और संगीत का आधारभूत तत्त्व है। काव्य का कलेवर ध्वनि और अर्थ से निर्मित होकर भाव सर्जन में सहायक होता है, किन्तु संगीत, मात्र ध्वनि से अपने अर्थ का, अपने भाव का ध्वनन कर देता है। काव्य में सामान्य रूप से आन्तरिक संगीत की ही प्रमुखता है। जब नाद के साथ कण्ठसंगीत में शब्द जोड़ दिए जाते है तब प्रधानता नाद को रहती है। नाद में उससे होनेवाले सहजात भाव की अभिव्यक्ति होती है, शब्दार्थ की नहीं। कह सकते हैं कि संगीत जो अपनी प्रकृति से निराकार है, वही मानवनिर्मित ध्वनि-संकेतात्मक शब्दार्थमयी भाषा में साकार रूप ग्रहण करता हुआ दिखाई देता है। ध्वनि और संगीत के मेल से कविता में जो भावात्मक संसार की सृष्टि होती है वह वास्तव में शब्दों से परे होते हैं। विशेष अनुभूति होने के कारण वह अनुभव योग्य ही है। इसप्रकार के काव्यों को पढ़ते समय जो आनन्दानुभूति होती है उसको, शब्दबद्ध तो करते ही है किन्तु जिसका अनुभव हम करते हैं वह संपूर्ण दृष्टि से अभिव्यक्ति साध्य नहीं है। यही नहीं यह अनुभव-स्तर हर एक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होता है। तभी तो उन कृतियों का अध्ययन अलग-अलग दृष्टिकोण से होते रहते है।

संगीत मूल रूप में नादपरक सृष्टि है शब्दपरक नहीं। काव्य में भावनाओं की जो अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ से की जाती है वही अभिव्यक्ति संगीत में नाद और उस नाद से उद्‌भूत नादात्मक अर्थ से होती है। "सौंदर्यशास्त्र में, स्वरभाषा को संगीत, प्रतीकभाषा को

नृत्य एवं शब्दभाषा को साहित्य कहा गया है।"[1] भाषा के आधार पर यह विभाजन किया गया है और संगीत को स्वरात्मक भाषा कहा गया है। दूसरे शब्दों में स्वरों की भाषा से संगीत बनता है। 'साहित्य का मर्म' के लेखक ने कहा है कि "काव्यकला का आधार भाषा है जो नाद का भी विकसित रूप है। ... काव्य का आधार नाद का स्वर-व्यंजनात्मक स्वरूप है।"[2] यहाँ नाद से तात्पर्य ध्वनि से है। स्वर-व्यंजनों की आवृत्ति से ही काव्य में ध्वन्यात्मकता आ जाती है। सौंदर्य तथा माधुर्य की उपलब्धि केलिए कविता की भाषा संगीत का आश्रय लेती है। "प्रत्येक शब्द का अपना ध्वनिमान या संगीत है, तथा शब्दों का सुसंयोजित समुच्चय के विशेष संगीत की सृष्टि करता है जो उसी में अन्तर्निहित है, जो इंगित भावों का समतुल्य है।"[3] स्पष्ट है ध्वनियों के कलात्मक संयोजन से ही सांगीतिक योजना होती है। संगीत का सौंदर्य बाह्य विषय पर निर्भर न होकर ध्वनियों के संयोजन, उनका आवर्तन-पुनरावर्तन उनकी तीव्रता-मन्दता आदि में ही निर्भर रहता है। 'साहित्यकला' शीर्षक गंथ में संगीत के सौंदर्य को यों विवेचित किया गया है - "संगीत, शब्द की कला है। प्राकृतिक शब्द केवल ध्वनिस्पन्दन है। उनकी ध्वनियाँ किसी पदार्थ, भाव अथवा क्रिया का संकेत नहीं करती। ध्वनिप्रवाहों के लय में ही संगीत का सौंदर्य निहित रहता है।"[4] इससे स्पष्ट हो जाता है कि संगीत में ध्वनियों का प्रवाह और उससे उत्पन्न लय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य का सौंदर्य भी शब्दों में निहित होता है, अतः कविता मूलतः शब्दों की कला है। जबकि संगीत में सौंदर्य का आधार स्वर हैं। स्वर का मूल, नाद या ध्वनि है। कुछ ध्वनियाँ स्वभावतः मधुर होती है और उनका चित्-द्रावक प्रभाव होता है। इसका वैज्ञानिक कारण जो भी हो, ध्वनियों का माधुर्य और

---

1. *In aesthetics the tone language is known as music. the sign language as dancing and the word language as the literature"*

   - H.P. Krishna Rao - "The Psychology of Music P.8

2. *आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - 'साहित्य का मर्म' पृ. 11*
3. *अरुण कमल - 'गद्य कविता' पृ. 87*
4. *डॉ. रामानन्द तिवारी - 'साहित्य कला' - पृ. 57*

चित्-द्रावक प्रभाव जीवन में व्यापक रूप से विद्यमान है और यह सर्वमान्य है। कविता में दो चीज़ें होती है - भाषा और भाव। दोनों के समुचित संयोग से ही उसमें जीवन्तता आती है। भाषा कविता का प्राणदायक तत्त्व है।

1.1. काव्यभाषा और संगीत :-

संगीतात्मकता के आधार पर शब्दों की रचना ही काव्य है। काव्य में शब्दसाधना के साथ वर्ण एवं मात्रा गणना प्रधान होती है, और संगीत में स्वर और ताल साधना प्राप्त होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत, स्वर के रूप में कविता है। इसके मूल में निहित अनिवार्य तत्त्व और कुछ न होकर ध्वनि ही है। काव्यभाषा अनिवार्य रूप से संगीतात्मक होती है। गद्यभाषा से काव्यभाषा की प्रकृति को स्पष्ट करने वाला यह विशिष्ट व्यवच्छेदक तत्त्व है। दूसरे शब्दों में संगीतात्मकता को काव्यभाषा की अपरिहार्य प्रकृति का रूप माना जा सकता है। काव्यभाषा का प्राण राग है, जो ध्वनि-लोक कल्पना है। इसके सहारे कविता उन्मुक्त उड़ान भरती है। संसार का प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक ध्वनि का चित्रमात्र है। "भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र-राग है।"[1] इससे व्यक्त है कि राग की उत्पत्ति केलिए भाव और भाषा दोनों की मैत्री अपेक्षित है। राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते हैं। प्रत्येक शब्द एक संकेत मात्र हो जो विश्वव्यापी संगीत की अस्फुट झंकार है। वह अपनी ध्वन्यात्मक मूर्ति द्वारा अर्थ को व्यक्त करता है। शब्द का अर्थ उसकी आत्मा तक है जो उसे चेतना, स्फूर्ति, प्रकाश, गांभीर्य तथा जीवन प्रदान करती है। इस दृष्टि से प्रत्येक शब्द और उसकी ध्वनि, काव्यभाषा के महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

---

1. पन्त 'पल्लव' की भूमिका - पृ. 31

हिन्दी साहित्य के इतिहास ने प्रमाणित किया है कि भिन्न-भिन्न युगों में काव्यभाषा का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न रहा है, और प्रत्येक प्रतिष्ठित कवि के काव्यभाषा का अपना वैशिष्ट्य है। इस दृष्टि से प्रसाद और निराला की काव्यभाषा की अपनी विशेषता है। प्रसाद की काव्यभाषा आधुनिक युग के आरंभिक चरण अर्थात् व्रजभाषा से लेकर छायावाद युग तक की भाषिक रचना को आत्मसात् किये हुए हैं। जबकि निराला की काव्यभाषा विशुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली ही है। भाषा की भावनात्मक व्यंजना को मुखरित करने का कार्य सर्वप्रथम प्रसादजी ने ही किया है। उन्होंने शब्दों को कोदेश, काल, परिवेश के अनुरूप स्वर दिया है। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है कि काव्यभाषा भी संगीत के समान युग, देश, काल परिवेश आदि के अनुसार बदलती है। संगीत तो काव्य के वर्ण-वर्ण से बँधा होता है। सौंदर्य स्रष्टा सहृदय और संस्कारी कवि अपनी काव्यभाषा को निरन्तर संगीतमय बनाए रखता है और कविता का यह संगीत भी हर युग के साथ बदलता रहता है। 'हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत' शीर्षक ग्रंथ में कहा है कि "संगीत एक परिवर्तनशील कला है अतः कालचक्रानुसार, कालान्तर में परिस्थितियों तथा जनरुचि के परिवर्तन के साथ इस पद्धति में परिवर्तन होने लगा।"[1] इस उद्धरण से उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण हो जाता है कि संगीतकला युगीन परिस्थितियों तथा जनरुचि के अनुसार परिवर्तित होता है। प्रत्येक युग में संगीतशास्त्र तथा क्रियात्मक संगीत में एकरूपता रहती है अर्थात् युग विशेष में विभिन्न राग संगीतज्ञों द्वारा जिस भाव से प्रस्तुत किए जाते थे उसी के आधार पर उस युग के संगीतशास्त्र का निर्माण होता है। जनरुचि तथा परिस्थितियों के अनुसार क्रियात्मक संगीत में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः किसी युग विशेष के कवि-संगीतज्ञ के संगीतज्ञान परखने की कसौटी उसी युग तथा समय की प्रचलित संगीत पद्धतियाँ तथा उस युग के प्राप्त ग्रंन्थ ही होने चाहिए। तभी उनके साथ न्याय होगा। पुराने ढाँचे में नये को ढालना अस्वाभाविक ही

---

1. डॉ. उषा गुप्ता - 'हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य के संगीत' - पृ. 176

नहीं अन्याय भी है। इस दृष्टि से व्रजभाषा के संगीतशास्त्र के आधार पर खड़ीबोली के संगीत को परखना न्यायसंगत नहीं है। जहाँ तक आन्तरिक संगीत की बात है उसके तत्त्वों में तो भिन्नता नहीं होंगे, किन्तु उसके प्रस्तुतीकरण और परखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है।

स्वरमैत्री के आधार पर संगीत-सृष्टि होती है इसके बदलाव के अनुसार संगीत भी परिवर्तन होता है। निराला ने इस ओर संकेत किया है कि "भारतीय संगीत की स्वरमैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं वे अंग्रेज़ी संगीत में अनुकूल माने जाते हैं। इसलिए अंग्रेज़ी संगीत की हू-ब-हू नकल से भारत के कानों को कभी भी तृप्ति नहीं होगी।"[1]

काव्यभाषा के समयानुसार बदलने की प्रवृत्ति की ओर प्रसाद और निराला दोनों ने संकेत किया है। प्रसाद के काव्य की भाषा अपने आप में इसके सशक्त प्रमाण है। उन्होंने अपनी काव्यरचना का प्रारंभ व्रजभाषा में किया था और बाद में, धीरे-धीरे खड़िबोली को अपनाते हुए उसे काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके पीछे यह मानसिकता है कि कवि, भाषा को अधिक से अधिक अपने वातावरण तथा अपनी अनुभूतियों के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है। इस दृष्टि से यह भाषा परिवर्तन प्रसाद केलिए एक चुनौती थी। जबकि निराला को इसप्रकार की कठिनाइयों से जूझने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनके समय तक आते-आते खड़ीबोली काव्यभाषा के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा पा चुकी थी। फिर भी उन्होंने भाषा के निरन्तर विकास और परिवर्तन का समर्थन करते हुए कहा है कि "भाषा समयानुसार, देशानुसार अपना रूप बदलती रहती है। कला के विकास के साथ-साथ साहित्य में नई भाषा भी विकसित होती है।"[2]

---

1. *निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 10*
2. *निराला -'प्रबन्ध पद्म'- पृ. 89*

वेदों से लेकर युगानुसार संगीत कला में भी काफी परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के कई कारण हैं। भाषा, भौगोलिक स्थिति, शीत, ताप, जल-वायु, सभ्यता, संस्कृति आदि के कारण संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं के उच्चारण-संगीत में भी भिन्नता आ जाती है। जब भाषा बदलती है, तब उसका पूरा स्वरूप भी बदलता है। ध्वनि खण्डों का स्वरूप एक भाषा से दूसरी भाषा में भिन्न प्रकार का होता है।

काव्यभाषा के परिवर्तन की ओर ज़्यादा ध्यान देने के कारण प्रसाद, संगीत की ओर उतना ध्यान नहीं दे पाया जितना निराला ने दिया। इसका यह अर्थ कदापि नही कि प्रसाद ने संगीत की ओर ध्यान ही नहीं दिया। निराला द्वारा यद्यपि खड़ीबोली में संगीत को स्थापित करने का सशक्त प्रयास हुआ, जिसका प्रारंभ वास्तव में प्रसाद ने ही किया था। अतः कह सकते है कि प्रसाद द्वारा प्रारंभ किये गए प्रयासों को निराला ने उसकी चरम स्थिति तक पहुँचाया। उनका गीत व्रजभाषा का गीत नहीं है। उन्होंने 'गीतिका' की भूमिका में कहा भी है कि "मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह व्रजभाषा में नहीं। व्रजभाषा के पदगाने वाले उस्ताद प्राचीन उत्तर संगीत के स्कूल के कलावन्त, जिन्हें खड़ीबोली का बहुत साधारण ज्ञान है, मेरे गीत गा न सकेंगे। यह मैं जानता था।"[1] यहाँ भाषा एवं संगीत की परिवर्तनशीलता की ओर संकेत किया गया है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रसाद ने जिस व्रजभाषा का प्रयोग किया है वह सूर आदि की व्रजभाषा के समान विशुद्ध रूप में न होकर खड़ीबोली के स्पष्ट प्रभाव के साथ प्रस्तुत किया है। इसलिए उनके काव्य में व्रजभाषा-संगीत का समृद्ध रूप नहीं मिलते।

भाषा, संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। प्रसाद के अनुसार "कवित्व वर्णमय संगीत है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।"[2] निराला ने इस तथ्य को

---

1. *निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 18*
2. *प्रसाद ग्रंथावली - (खण्ड-2)'स्कन्दगुप्त' - पृ. 442*

स्वीकार करते हुए कहा है "गीत-सृष्टि शाश्वत है। समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है।"[1]

दोनों उद्धरणों से ध्वनि और संगीत का संबन्ध व्यक्त हो जाता है, और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण-संबन्धी दोनों कवियों की मान्यता क्या है। दोनों के अनुसार संगीत तो काव्य के वर्ण- वर्ण से बँधा होता है और काव्य में संगीत की योजना ध्वनि के माध्यम से होती है। भाषा की मूल इकाई होने के कारण वर्णों का अपना महत्त्व निर्विवाद है। काव्य सौंदर्य और नादसौंदर्य दोनों की दृष्टि से भी प्रत्येक वर्ण महत्त्वपूर्ण है।

1.2 नादसौंदर्य और संगीत :-

काव्य भाषा में नादसौंदर्य का अप्रतिम स्थान है। इसकी सृष्टि शब्द की ध्वनि से होती है। काव्य में नाद या ध्वनिसौंदर्य तो होता ही है जिसे काव्यशस्त्रियों ने पर्याप्त महत्त्व दिया है, साथ ही शब्दों के सुनियोजित प्रयोग से भी नादात्मक सौंदर्य उत्पन्न होता है। इसकेलिए कवि को कल्पना-शक्ति का सहारा लेना पड़ता है।

काव्य में नादसौंदर्य उत्पन्न करनेवाले ध्वनितत्त्व का महत्त्व निर्विवाद एवं असंदिग्ध है। भाषा की अपेक्षा नाद के प्रभाव का क्षेत्र अधिक व्यापक है। भाषा भले ही कभी-कभी ठीक-ठीक मनोभावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ न हो, परन्तु नाद कभी असफल नहीं होता। नाद-रूप सार्वभौम है वे भाषा की भाँति एकदेशीय नहीं। इस दृष्टि से देखे तो श्रेष्ठकाव्य का आनन्द असंस्कृतज्ञ व्यक्ति नहीं ले सकता, परन्तु नादसौंदर्य से जन्म लेने वाले आनन्द का अनुभव प्रत्येक को होता है।

---

1. निराला 'गीतिका' की भूमिका पृ. 7

कविता के नादसौंदर्य का भाव-प्रकाशन बहुत दूर तक कवियों की संगीतचेतना और लय निर्वाह पर निर्भर होता है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल के अनुसार "नादसौंदर्य ही कविता की आयु बढ़ाता है।"[1] कविता में संगीत का जो अंश रहता है वह पाठकों को आकर्षित करता है, उसके मन को आनन्दित करता है। जब तक कविता पाठकों के मन में रहती है, होठों पर नर्तन करती हैं, तब तक वह जीवित रहती है। इसप्रकार नादसौंदर्य से कविता चिरकाल तक जीवित रहती है।

संगीत की ध्वनियाँ साधारण ध्वनियों के समान होते हुए भी सौंदर्य को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने के कारण विशिष्ट हो जाती है। संगीत में नादसौंदर्य का महत्त्व प्रतिष्ठित है। "संगीत में ध्वनि के माध्यम से भाव, रूपाकार ग्रहण करता है और पुनः स्रोता में उसी भाव की सृष्टि करता है। काव्य में सुश्रव्यता नादात्मकता से ही आती है। भारतीय आचार्यों ने इसीलिए नादसौंदर्य को महत्त्वपूर्ण माना है। पाश्चात्य विचारकों ने भी स्पष्ट रूप में काव्य को चाक्षुष प्रत्यक्ष न मानकर श्रव्य स्वीकार किया है।"[2]

काव्य में नाद, शब्दों को विशिष्टता प्रदान करनेवाला और अन्तःसंगीत भरनेवाला तत्त्व है। नाद को शब्दसंगीत भी कह सकते हैं। शब्दों व ध्वनियों का लयक्रम ही काव्यसौंदर्य को अभिवृद्धि करता है।

प्रसाद और निराला के अपने काव्य के द्वारा अप्रतिम नादसौंदर्य से युक्त संगीत का परिचय दिया है। प्रसाद ने अर्थव्यंजक सस्वर शब्दों के प्रचुर प्रयोग द्वारा ही भाषा में नादसौंदर्य की सृष्टि की है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में भी नादसौंदर्य दृष्टव्य है -

---

1. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि (भाग-1) पृ. 179*
2. *"When I said that poetry was some rather than visual, I meant that poetry was most suitably to be apprehended by ear, that the patterns resonances and rhythms of poetry will scarcely standforth unless the ear is engaged."*

   - George whalley 'Poetic Pross' - Chapter X - music and rhythms - P.192-198

"चित्त चैन चाहत है चाह में भरी है चेति,
चैत चन्द नेक तो चकोरी को निहारिये।
रोते नैन कीन्हें तू कहाँ ते मदमाते पिक,
सीखीं यह बातें नेक धीर धरिके कहो।"[1]

उनकी खड़ीबोली रचनाओं से उदाहरण है-

"झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरदमाला,"[2]
* * * * * *

"निर्झर सा झिर झिर करता
माधवी कुञ्ज छाया में।"[3]
* * * * * *

"इस सुखे तट पर छिटक लहर"[4]
* * * * * *

"लालसा निराशा में ढलमल"[5]
* * * * * *

"स्निग्ध संकेतों में सुकुमार,
बिछल, चल थक जाता तब हार।"[6]

इन उदाहरणों में नादसौंदर्य से नव्यता आ गई है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1)'चित्राधार'पृ. 46*
2. *वही 'आँसू' पृ. 204*
3. *वही पृ. 205*
4. *वही 'लहर' पृ. 230*
5. *वही पृ. 242*
6. *वही पृ. 238*

निराला का संपूर्ण काव्य ही नादसौंदर्य से ओतप्रोत है। उन्हें नादसौंदर्य का सहज ज्ञान था। उनकी रचनाओं में नादसौंदर्य के द्वारा संगीत की धारा को प्रवाह मिली है-

"झर-झर-हर निर्झर गिरि-सरमें
घर मरु तरु-मर्मर सागर में।"[1]
* * * * * * *
"तरल सदा बहती कल-कल-कल
रूप-राशि में टलमल-टलमल
कुन्द-धवल-दशना।"[2]
* * * * * * *
"स्वर के सुमेरु से झर झरकर
आये हैं शब्दों के शीकर,
.....
कल रव के गीत सरल शत-शत
बहते हैं जिस नद में अविरत,
नाद की उसी वीणा से हत
होकर, झंकृत हो जीवन-वर ।"[3]

इस उदाहरणों में नादसौंदर्य की शोभा के साथ ध्वनि और संगीत का गहरा संबन्ध भी उभर आया है। निराला के अनुसार काव्य का लक्ष्य अर्थगौरव के ध्वनिमूलक सौंदर्य के साथ शब्द के ललित प्रकाश का भावमय संगीत है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 116*
2. *वही 'गीतिका' पृ. 207*
3. *वही (भाग-२) 'बेला' पृ 140-141*

प्रसाद और निराला दोनों की रचनाओं में कोमल एवं परुष दोनों प्रकारों की ध्वनियों का भाव एवं वातावरण के अनुकूल प्रयोग किया गया है। इनके छन्दबद्ध और मुक्तछन्द दोनों प्रकारों की रचनाओं में इसप्रकार की ध्वनियों का प्रयोग मिलते हैं। प्रसाद की छन्दोबद्ध पंक्तियाँ हैं -

"कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे, हिलते थे छाती पर हार;
मुखरित था कलरव गीतों में स्वर लय का होता अभिसार"[1]

इन पंक्तियों से काफी मिलती जुलती पंक्तियाँ निराला की भी है कि,

"कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण्-किण् रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी।"[2]

इन उदाहरणों में कोमल ध्वनियों के द्वारा दोनों कवियों ने नृत्य से संबन्द्ध वातावरण को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है और इनमें चित्रकला का स्पष्ट प्रभव भी दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त दोनों के मुक्तछन्द की रचनाओं में भी कोमल ध्वनियों के प्रयोग से अभौम सौंदर्य आ गया है।

प्रसाद की पंक्तियाँ हैं-

"चाँदनी के अंचल में
हरा भरा पुलिन अलस नींद ले रहा।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 280*
2. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 240*

सृष्टि के रहस्य सी परखने को मुझको
तारिकाएँ झाँकती थी।"[1]

यहाँ चाँन्दनी रात के सहज सौंदर्य को कोमल ध्वनियों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है, साथ ही 'चाँदनी', 'पुलिन', 'तारिकाएँ' आदि का मानवीकरण करके उसमें जीवन्तता को भी प्रदान किया गया है। निराला ने भी प्राकृतिक सौंदर्य का यथासाध्य अनुपम छटा प्रदान की है-

"लाज से सुहाग का
मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय निवेदन का
मन्द-हास-मृदु वह"[2]

इसप्रकार प्रसाद और निराला ने एक ओर कोमल वर्णों की योजना से अनुयोज्य संगीतात्मक वातावरण की उद्‌भावना की है तो दूसरी ओर गुरु-गंभीर भीषण वातावरण का परुष ध्वन्यात्मक ध्वनियों द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया है।'कामायनी'की ये पंक्तियाँ देखिए-

"हाहाकार हुआ क्रन्दनमय कठिन कुलिश होते थे चूर।
हुए दिगन्त बधिर, भीषण रव बार-बार होता था क्रूर।"[3]

यहाँ प्रलय के भीषण वातावरण को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसीप्रकार निराला ने भी 'राम की शक्तिपूजा' में कठोर ध्वनियोजना से भीषण युद्ध के वर्णन का वाणी दी है-

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1)'लहर'पृ. 261*
2. *निराला रचनावली (भाग-1) -'परिमल'पृ. 132*
3. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1)'कामायनी'पृ. 281*

"आज का, तीक्षण-शर-विधृत-क्षिप्रकर वेग-प्रखर,
शतशेलसम्बवरणशील, नीलनभ-गर्ज्जित-स्वर
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद-कौशल-समूह,
साक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह।"[1]

दोनों उदाहरणों में कठोर ध्वनियों की योजना के बावाजूद भी वातावरण के अनुकूल संगीतात्मकता आ गई है। इसमें अनुप्रास योजना का भी योगदान है। प्रसाद और निराला के मुक्तछन्दों में भी कठोर ध्वनियोजना से भोषण वातावरण जीवन्त हो उठा है। प्रसाद के 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' से एक उदाहरण है -

"उनके समर वीर कर में तू नाचती
लप-लप करती थी-जीभ जैसे यम की।
उठी तू न लूट त्रास भय के प्रचार को,
दारुण निराशा भरी आँखों से देखकर
दृप्त अत्याचार को...."[2]

इन पंक्तियों में प्रसाद ने युद्ध की दारुण, अत्याचार एवं निराशापूर्ण परिणिति को ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

'बादल राग' की निम्न पंक्तियों में निराला की कठोर ध्वनियोजना-कौशल देखने योग्य है-

---

1. *निराला रचनावली (भाग-2) - 'अनामिका' पृ. 310*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 255*

"अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर
क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा-धीर।"[1]

बादल को सृजन के साथ-साथ ध्वंस का भी प्रतोक मानकर निराला ने संघर्ष और क्रान्ति के द्वारा शोषण-मुक्त समाज की सृष्टि केलिए आह्वान दिया है।

इसप्रकार प्रसाद और निराला की रचनाओं में ध्वनियोजना के माध्यम से नादसौंदर्य का सफल निर्वाह हुआ है साथ ही साथ संवेदना के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों को भी सफल अभिव्यक्ति मिली है।

नादसौंदर्य की दृष्टि से प्रसाद और निराला की रचनाओं का प्रत्येक वर्ण महत्त्वपूर्ण है। स्वर एवं व्यंजन, नादविधान के अविभाज्य तत्त्व है। इन्हीं के उचित प्रयोग से लयात्मकता आ जाती है। इसप्रकार काव्यभाषा में निहित संगीतात्मकता के कई रूप हैं। दूसरे शब्दों में यह संगीतात्मकता या नादसौंदर्य कई रूपों में घुल मिल गई है। शब्द-युग्मों के प्रयोग, शब्दालंकार योजना, अनुरणनात्मक ध्वनियों का प्रयोग, आदि के द्वारा काव्य में आन्तरिक संगीत का सफल एवं सार्थक निर्वाह हुआ है।

1.2.1 शब्द-युग्मों के प्रयोग और संगीत :-

कविता में सबसे पहले शब्दों का चुनाव होता है और ध्यान उसके अर्थ की ओर जाता है। शब्द के अर्थ के पश्चात् कवि उसकी ध्वनि, उसमें व्याप्त संगीत का विचार करता है। उनके शब्दों की उच्चारण ध्वनि और उनके अर्थ में साम्य दिखाई देता है। शब्द-युग्मों के

---

1. निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 123

प्रयोग से प्रयुक्त शब्द के भाव एवं अर्थ की अभिव्यक्ति तीव्र बन जाती है। वर्णों के दुहराव से उत्पन्न स्वराघात से, उसमें निहित भावो को व्यंजित करने में अत्यधिक सफल होते हैं। शब्द के पुनः पुनः प्रयोग से, रस में किसी प्रकार की बाधा का आभास नहीं होता। बल्कि काव्य में इसका प्रयोग वर्णित क्रिया-कलाप में वेग एवं गति लाते हैं।

इसके अतिरिक्त छन्द में संगीतात्मक लय भी उत्पन्न करने केलिए शब्द-युग्मों का प्रयोग किया जाता है।

प्रसाद और निराला ने अपने काव्य में शब्द-युग्मों का प्रयोग करके उन्हें नादात्मक बनाने का प्रयास किया है। प्रसाद की रचनाओं से कुछ उदाहरण हैं-

"दूर-दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय-समान"[1]

इसमें 'दूर' शब्द की आवृत्ति से 'विशालता' का गहन बोध हो जाता है।

"रो-रोकर सिसक सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी।"[2]

यहाँ 'सिसक' शब्द की आवृत्ति से दुःख की गहराई की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है।

"उठ-उठ ही लघु-लघु लोल लहर
उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती।"[3]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 278*
2. *वही 'आँसू' पृ. 204*
3. *वही 'लहर' पृ. 230*

इसमें 'उठ', 'लघु', 'गिर', 'फिर' आदि शब्दों की आवृत्ति के माध्यम से सागर के लहरों का स्वभाव स्पष्ट हो जाता है। साथ ही प्राकृतिक सौंदर्य अपना पूर्णत्व पा लिया है।

"छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
'धुल-धुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।"[1]

इन पंक्तियों में 'छिल-छिल', 'मल-मल', 'घुल-घुल' आदि के प्रयोग से छाले पड़ने के अनुभव को तीव्रता मिली है।

"धीरे-धीरे जगत् चल रहा
अपने उस ऋज़ु पथ में,"[2]

इस में 'धीरे' शब्द की आवृत्ति से जगत्, के अपने ऋजु पथ में चलने की जो गति है उसकी मदता का आभास हो जाता है।

निराला की रचनाओं में भी शब्द-युग्मों का काफी प्रयोग हुआ है-

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।"[3]

यहाँ 'झूम' तथा 'गरज' शब्द की आवृत्ति से बादल के स्वभाव का सूक्ष्म अंकन हुआ है।

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'आँसू' पृ. 202*
2. *वही 'कामायनी' पृ. 310*
3. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 116*

"वह रंग-दल बदल-बदलकर
नव-नव परिमल मल-मलकर"[1]

इसमें 'बदल', तथा 'नव' शब्द दोनों एक दूसरे से संबद्ध है और नवीनता को सार्थक बनाने केलिए रंगों के बदलने का चित्रण किया है। परिवर्तन की गतिशीलता से नवीनता को जीवन मिला है।

"रंग गयी पग-पग धन्य धरा -
हुई जग जगमग मनोहरा।"[2]

इसमें 'पग' शब्द की आवृत्ति से संपूर्ण धरा का धन्य होना व्यंजित है।

"गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार"[3]

इसमें प्रयुक्त बार शब्द स्वयं पुनरुक्ति का सूचक है और यहाँ हथौडे के प्रहार करने की तीव्रता को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

प्रसाद और निराला ने कहीं-कहीं एक ही शब्द का दो से अधिक बार प्रयोग किया है। आत्यन्तिक रूप से इन प्रयोगों का लक्ष्य है ध्वनियों के आवर्तन द्वारा काव्य में संगीतात्मकता लाना, साथ ही भावों एवं विचारों को उसकी पूर्णता तक ले जाना। शब्द-युग्मों के प्रयोग से काव्य में एक प्रकार का लय आ जाता है जो कवि की भावनाओं, कल्पनाओं, विचारों में गतिशीलता लाते हैं, और मुक्तछन्दों में भी लय का निर्वाह इन्हीं के माध्यम से संभव हो पाता है।

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 250*
2. *वही पृ. 220*
3. *वही 'आराधना' पृ. 323*

काव्यगत संगीत केलिए स्वर, लय और नाद तीनों की समुचित योजना की आवश्यकता है, और इनमें से लय का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि वह अनुभूति से भिन्न नहीं है और अनुभूति काव्य का प्राण है। दोनों महान कवियों के विशेषकर निराला के काव्य में इनकी रक्षा हुई है। स्वर की रक्षा केलिए आनुप्रासिक शब्दावली की आवश्यकता होती है।

1.2.2 शब्दालंकार योजना और संगीत :-

भारतीय साहित्य में ही नहीं पूरे विश्वसाहित्य में अलंकारों का बहुत महत्त्व है। प्रायः सभी आचार्यों ने भाषा की श्रीवृद्धि केलिए अलंकारों की महत्ता को स्वीकार की है। ये भाषा की पुष्टि केलिए, राग की परिपूर्णता, केलिए आवश्यक उपादान हैं। नादमय संसार की सृष्टि केलिए शब्दालंकारों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भावसौंदर्य और शब्दाललित्य में चमत्कार लाने के उद्देश्य में शब्दालंकारों का प्रयोग होता है। इनके प्रयोग से साहित्यकार शब्दों के अर्थ को शताब्दियों तक अमर कर देता हैं। इसमें संगीत का भी योगदान है। काव्यगत प्रभाव और संगीत की गति को बढाने में शब्दालंकारों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

शब्दालंकारों में से अनुप्रास से संगीत विधान संभव होता है। अनुप्रासों का समावेश वहीं अच्छा लगता है जहाँ वह संगीत को पुष्ट करता है। विद्वानों ने ध्वनि से शब्दालंकार की सृष्टि बताए हैं। इस अलंकार से भाषा के नादसौंदर्य की वृद्धि होती है। इसमें कर्णप्रिय ध्वनि का छन्दात्मक प्रवाह में अनुरणन् होता है, फलतः संगीत के प्राणत्व स्वरलय की आभा शब्दयोजना में झलक उठती है। प्रसाद और निराला ने शब्दालंकारों में से अनुप्रास का प्रयोग अधिक किया है। अनुप्रास में ध्वनि का चमत्कार इतना अधिक होता है कि यदि ऐसी शब्दावली का उच्चारण न करके उसे मन ही मन पढ़ा जाए तो उस स्थिति में भी मन एक

प्रकार की सांगीतिक नादात्मकता में निमग्न हो जाता है। प्रसाद की व्रजभाषा की रचनाओं में वर्ण मैत्री व्रजभाषा काव्य के ही अधिक निकट है-

"नीरव नील निशीथिनी
नोखी नारि निहारि।"[1]
* * * * * * *
"सुन्दर सुहृदय सम्पति सुखदा सुन्दरी ले साथ में।"[2]

पहले उदाहरण में 'न' कोमल ध्वनि की सात बार और 'र' की 'तीन' बार आवृत्ति हुई है। दूसरे में 'स' की 'छह' बार आवृत्ति हुई है। ये ध्वनियाँ कर्णप्रिय संगीतात्मकता के साथ प्रस्तुत हुई है।

*"उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर"*3
* * * * * * *
"हिलते द्रुमदल कल किसलय
देती गलबाँही डाली"[4]
* * * * * * *
"कितनी मधु-संगीत-निनादित
गाथाएँ निज ले चिर-संचित
ताल तान गावेगी वंचित"[5]

---

1. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'चित्राधार' पृ. 9*
2. *वही 'काननकुसुम' पृ. 118*
3. *वही 'लहर' पृ. 230*
4. *वही 'आँसू' पृ. 208*
5. *वही 'लहर' पृ. 240*

इन उदाहरणों में 'ल', 'त' और 'न' ध्वनियों के आवर्तन द्वारा संगीतात्मकता सहज ही आ गई है।

निरालाजी अलंकारों को काव्यभाषा का उपकरण बनाने के विरुद्ध थे। काव्य-सृष्टि के स्वाभाविक गतिप्रवाह में उनका अनायास संयोग हो जाना ही निराला केलिए स्वीकार्य था। उनके काव्य में पंक्ति-पंक्ति में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग मिलते है-

"नव गति, नव लय ताल-छन्द नव
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर नव स्वर दे।"[1]

इसमें 'न', 'व' की इतनी बार आवृत्ति हुई है कि संगीतात्मकता के साथ-साथ नवीनता भी सहज ही आयी है।

"द्रुत, झलमल-झलमल लहरों पर
वीणा के तारों के-से स्वर..."[2]
* * * * * * * *
"चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल"[3]
* * * * * * * *
"जननि, जनक-जननि-जननि
जन्म भूमि-भाषे

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 211*
2. *वही पृ. 218*
3. *वही पृ. 206*

जागो, नव अम्बर-भर,

ज्योतिस्तर-वास"[1]

इन उदाहरणों में 'ल', 'च', 'म', 'ज', 'न' आदि ध्वनियों की कई बार आवृत्ति हुई है। इसप्रकार उन्होंने नाद-संगीत की सृष्टि की है।

शब्दालंकारों से निश्चय ही कविता के आन्तरिक संगीत में वृद्धि होती है। स्पष्ट है कि प्रसाद और निराला ने अनुप्रास का प्रयोग संगीत - सृष्टि की दृष्टि से किया है और श्रुति मधुर संगीतात्मकता से उनके काव्य ओतप्रोत है।

संगीतात्मक दृष्टि से अंत्यानुप्रास की महत्ता विशेष उल्लेखनीय है।

प्रसाद की रचनाओं में अंत्यानुप्रास की सफल योजना हुई है-

"व्यक्त नील में चल प्रकाश का कंपन सुख बन बजता था,

एक अतींद्रिय स्वप्न-लोक का मधुर रहस्य उलझता था।"[2]

* * * * * * *

"संकेत कौन दिखलाती,

मुकुटों को सहज गिराती,

जयमाला सूखी जाती

नश्वरता गीत सुनाती।"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) -'गीतिका'पृ. 233*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1)'कामायनी'पृ. 286*
3. *वही'लहर'पृ. 253*

इनमें 'आ', 'ई' आदि का पद्धतिपरक स्वर संयोजन हुआ है।

निराला ने अंत्यानुप्रास के द्वारा संगीतात्मकता की रक्षा की है-

"किसलय वसना नवलय लतिका।"[1]

* * * * * * *

"गौरे अधर मुसकाई

हमारी वसन्त विदाई

अंग-अंग बलखाई"[2]

इनमें 'आ', 'ई' स्वर ध्वनियों का सफल संयोजन हुआ है। इसके अलावा दोनों की रचनाओं में वाद्ययन्त्रों, आभरण आदि की ध्वनियों द्वारा संगीतात्मक वातावरण की सृष्टि की गई है।

1.2.3 अनुरणनात्मक ध्वनियों के द्वारा संगीत-योजना :-

काव्य में अनुरणनात्मक ध्वनियों द्वारा संगीतात्मकता का समावेश हो जाता है। यह शब्दों का एक गुण होने के कारण पाठकों पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। ध्वनियों का प्रभाव-जनित अर्थ उसके उच्चारण पर आश्रित होता है। 'स्वर' की अनुरणनमयता अर्थात् स्वतः रंजकत्व संगीत केलिए अनिवार्य है। प्रसाद की पंक्तियों को देखिए -

"अरी आँधियों! ओ बिजली की दिवा-रात्रि तेरा नर्तन

उसी वासना को उपासना वह तेरा प्रत्यावर्तन।"[3]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 239*
2. *वही (भाग-2) 'आराधना' पृ. 397-398*
3. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'कामायनी' पृ. 279*

यहाँ प्रसाद ने 'आँधी' को संबोधित करते हुए उसकी विशेषताओं को प्रस्तुत किया है।

निराला ने बादल के गर्जन का बिंब उपस्थित किया है -

"ऐ - निर्बंध -
अंध-तम अगम-अनर्गल-बादल
ए - स्वच्छन्द
मन्द-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल
ऐ उद्दाम।"[1]

प्रस्तुत दोनों उदाहरणों में स्वरवर्णों की एकता के कारण नादात्मक अनुरणन् पैदा हो जाता है।

अर्थध्वननकारी योजना भी संगीत से काफी संबन्ध रखते हैं।

प्रसाद के 'लहर' संकलन से उदाहरण हैं -

"सिहर भरी कंपती आवेंगी
मलयानिल की लहरें।"[2]
* * * * * *
"हँस झिलमिल हो लें तारा गन"[3]
* * * * * *
"आने दो मीठी मींड़ों से नूपुर की झनकार"[4]

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'परिमल' पृ. 116-177*
2. *प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1) 'लहर' पृ. 249*
3. *वही पृ. 250*
4. *वही 'झरना' पृ. 171*

इन उदाहरणों के 'सिहर भरी कंपती', 'झिलमिल', 'नूपुर की झनकार' आदि अपने उच्चारण मात्र से अपने अर्थ को ध्वनित कर देती है।

निराला की रचनाओं में अनुरणनात्मक ध्वनियों का सफल प्रयोग हुआ है -

"वे गए असद दुःख भर
वारिद झर झर झर कर।
नदि-कल कल छल, छल - सी,
वह छवि दिगन्त-पल की"[1]
* * * * * * * * *
"बाजे नूपुर रुन-रिन-रन झन।"[2]

इन उद्धरणों में निर्झर का 'झर झर' नदी का 'कल-कल', 'छल-छल' शब्द के साथ बहना, नूपुरों की 'रुन-रिन-रन झन' आदि ध्वनि से रणन् ध्वनि की वह सृष्टि हुई है जो अपने उच्चारण मात्र से अपने अर्थ को व्यंजित कर देती है।

इसप्रकार प्रसाद और निराला के काव्य में अनुरणानात्मक ध्वनियोजना तथा अर्थध्वननकारी योजना द्वारा संगीत की सृष्टि एवं निर्वाह हुआ है।

1.2.4 छन्दयोजना और संगीत :-

छन्द एक ध्वनि समूह है। इसका आधार भी ध्वनि है। छन्द की सीमा मनुष्य द्वारा उच्चरित ध्वनि परिधि में ही समृद्ध है। "अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलने से छन्द की

---

1. *निराला रचनावली (भाग-1) - 'गीतिका' पृ. 249*
2. *वही 'परिमल' पृ. 186*

सृष्टि होती है।"[1] अर्थात् छन्द का, अर्थमयी भाषा और संगीत के साथ घनिष्ठ संबन्ध है। यहाँ और एक अर्थ भी व्यंजित है कि भाषा में अर्थपूर्णता होनी चाहिए, अतः इस दृष्टि से छन्दोबद्ध और मुक्तछन्द दोनों में यह विशेषता रहती है।

छन्द के बिना वाणी उच्चरित नहीं होती - "*नाच्छन्दसि वागुच्चरित।*"[2] उसी प्रकार छन्द रहित कोई शब्द नहीं, बिना शब्द को कोई छन्द नहीं -

"*छन्दोहीना न शब्दोस्ति न छन्द शब्द वर्जितम्।*"[3]

इन परिभाषाओं से साबित हो जाता है कि छन्द और शब्द परस्पर निर्भर है और इसका अर्थ यह है कि समस्त भाषा छन्दमय है। भाषा के उच्चारण और उसके संगीत के साथ छन्द का संबन्ध है। अतः प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण संगीत के अनुकूल होने चाहिए।

छन्दों में भी वर्णों की महत्ता है। मात्रिक छन्दवाली कविताओं में संगीत का समावेश कराना आसान है। छन्द में गण का निर्धारण अक्षरों के आधार पर होता है और इसमें ध्वनि के दोनों ही भेद-स्वर तथा व्यंजना-आते हैं। जयदेव, सूर, तुलसी जैसे कवियों के गीत मात्रिक छन्द के थे। इसलिए उसमें शास्त्रीय संगीत संबन्धी नियमों का पालन अपेक्षाकृत रूप से हो पाया है। मुक्तछन्दों में भी संगीत-आन्तरिक संगीत-का निर्वाह होता है। ध्वनियों की आवृत्ति गुरु, लघु गणों का क्रम आप ही एक निश्चित लय लाता है जिससे संगीतात्मकता अपने आप ही आ जाती है।

---

1. *आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - 'साहित्य का मर्म' पृ. 46*
2. *वैदिक छन्दोमीमांसा पृ. 5*
3. *वही पृ. 9*

साधारण वाक्य में जो प्रवाह और क्षमता लक्षित नहीं होती वह छन्द व्यवस्था से संभव है। कविता हमारे हृदय का संगीत है और संगीत केलिए बन्धन अनिवार्य है। और यह बन्धन जहाँ तक संभव है बाह्य संगीत में अधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रसादजी ने जानबूझकर कविता को किसी बन्धन में बाँधना या उसे मुक्त करने का प्रयास नहीं किया है। उनकी भावधारा जिस रूप में जिस वेग से निःसृत हुई उसपर उन्होंने कोई बन्धन नहीं लगाया; वह स्वयं ही नाना प्रकार के मात्रिक, वार्णिक, तुकांत, अतुकांत छन्दों के आकार में ढलती गई। इन छन्दों में उन्होंने केवल मात्राओं की ही नहीं बल्कि भाव के अनुसार ध्वनियों का प्रयोग भी किया है।

निराला ने प्रत्येक काव्य-पंक्ति में ह्रस्व और दीर्घ ध्वनियों की गणना और मात्राओं वाले कठोर नियमों का त्याग किया है। उनके मुक्तछन्द की मुख्य विशेषता है ध्वनियों का सफल और सामंजस्यपूर्ण मेल, अपने ढंग की लय, जो कविता को सरलता, संगीतात्मकता, गेयता और अभिव्यक्तिशीलता प्रदान करती है।

प्रसाद और निराला दोनों मुक्तछन्द को मानते थे। प्रसाद के 'लहर' संकलन में तीन कविताएँ हैं - 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरासिंह का शास्त्र समर्पण', 'प्रलय की छाया' - जो निराला के 'जूही की कली' की कोटि में आते हैं। लेकिन मुक्तछन्द को निराला से संबद्ध करके परखा जाता है क्योंकि उन्होंने ही उसको परिभाषित करने का सफल प्रयास किया है। मुक्तछन्द को प्रश्रय देने के पीछे, छन्द को सर्वथा त्याग करने की मानसिकता न होकर नवीनता के प्रति आग्रह था, साथ साथ यह भी स्थापित करना चाहता था कि छन्द-नियमों के कठोर पालन के बिना भी सार्थक कविताएँ हो सकती हैं। निराला के मुक्त छन्द एवं उसके लय के सबन्ध में डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "निराला की पहली कविता 'जुही की कली' में ही छन्द का बन्धन टूट गया। छन्द के बन्धन को तोडकर उन्होंने उस मध्ययुगीन

मनोवृत्ति पर प्रहार किया, जो छन्द और कविता को प्रायः समानार्थक समझने लगी थी।"[1] मध्ययुगीन मनोवृत्ति थी कि छन्द और कविता समानार्थक है। लेकिन निराला ने इसके विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। कोई भी तत्त्व एक दूसरे के समानार्थक नहीं हो सकते। सभी की अपनी-अपनी अलग पहचान है। इसलिए कविता, छन्द नहीं और नहीं छन्द कविता। दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबन्ध है और दोनों तत्त्व एक दूसरे में अन्तर्लीन है। इस दृष्टि से देखें तो मुक्तछन्द में लिखी गई कविताओं में ध्वनि एवं शब्दों का लय है, छन्द न होकर भी छन्द है। उन्होंने युग की माँग के अनुसार कविता के शिल्प पक्ष में कुछ परिवर्तन या नयेपन लाने का प्रयास किया है। "उन्होंने केवल बन्धन का विरोध किया था, छन्द का नहीं; अर्थात् उन्होंने कविता करते समय मात्राओं या अक्षरों की निश्चित गणना से युक्त नियमबद्ध छन्दों की प्रतिबद्धता का विरोध किया था, भाषा के निश्चित प्रवाह का नहीं जो अन्ततः छन्द ही होता है।"[2] इससे स्पष्ट है कि निराला ने भाषा के निश्चित प्रवाह का विरोध नहीं किया था। भाषा में निश्चित प्रवाह लाने केलिए छन्द को आवश्यकता है और इसमें लय उत्पन्न होती है जिससे संगीतात्मकता की रक्षा हो जाती है।

छन्द का संबन्ध लय से है और लय का, संगीत और राग से। राग में शब्द नहीं होते, ध्वनियाँ होती है। ध्वनियों-सप्तस्वरों-के आधार पर ही राग का निर्धारण होता है। जिसप्रकार राग से विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति होती है उसीप्रकार छन्द के द्वारा पाठकों के विशेष मनोभावों की उपयुक्त नादव्यंजना एवं लय की व्यवस्था करके रागात्मक वृत्तियों का अनुरंजन करते है।

---

1. *आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - 'हिन्दी साहित्य' पृ. 311*
2. *डॉ. कृष्णदेव झारी - 'युवकवि निराला' पृ. 223*

कविता में भावों का मर्मस्पर्शी संगीत-भाषा के मनोरम संगीत से ओतप्रोत होकर पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होता है। दोनों के मेल से ही विश्व का अन्तरतम संगीत कविता के मुखरित होता है।

संगीत का स्वर, ताल, लय से प्रस्फुटित 'नाद' में होता है, इसी से ध्वनि का महत्त्व है। स्वर, ताल, लय की 'हारमॉनी' जब शास्त्रीय संगीत की परिधि में होती है, तब उसका काव्य से कोई सीधा सरोकार नहीं होता। कविता संगीत से उतना स्वीकारती है जितना बिना गायन, वादन के, ध्वनि मात्र से संप्रेषित हो सकता है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि कविता को वाद्यों के सहारे संगीत में न ढ़ाल सकते।

शब्द को विस्तार मिलता है संगीत में नाद के स्तर पर, और इस नाद या ध्वनि में अपार शक्ति होती है। संगीत में जिन ध्वनियों का विस्तार होता है वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी होती है तथा चित्त को द्रवित कर देती है। प्रसाद और निराला की रचनाओं में भी इसप्रकार की ध्वनियों का सफल संयोजन हुआ है। उनकी रचनाएँ ध्वनि और संगीत की दृष्टि से आधुनिक कविता की अतुलनीय उपलब्धि है।

प्रसाद और निराला की कृतियों का अध्ययन ध्वनि और संगीत की दृष्टि से करने पर हमारे सामने उक्त विषय से संबद्ध भारतीय चिन्तनधारा की एक पीठिका उपस्थित हो जाती है। इनकी रचनाओं का अध्ययन उक्त दृष्टिकोण से करने पर सिद्ध हो जाता है कि काव्य चेतना के सदृश ही इनकी ध्वनि एवं संगीत चेतना में भी पर्याप्त मौलिकता है।

उपसंहार

संगीत का मूल्यांकन करते समय काव्य की और काव्य की चर्चा करते समय संगीत की बात आ ही जाती है। वाणी के ये दो प्रसिद्ध रूप हैं, और दोनों का क्षेत्र एक दूसरे को बहुत दूर तक स्पर्श करता है। इसलिए दोनों का संबन्ध भी सहजात माना जाता है। यह कहना बहुत ही कठिन है कि संगीत से काव्य श्रेष्ठ है या काव्य से संगीत। मानव की व्यक्त भाषा का पूर्वरूप तो अव्यक्त ध्वनिसंकेत है। काव्य और संगीत के मूल में भी ध्वनि ही वर्तित है।

प्रसाद और निराला छायावादी युग के सर्वाधिक पौरुष-प्रखर कवि माने जाते हैं। दोनों के काव्य, ध्वनि एवं संगीत तत्त्व से अनुप्राणित है। इन तत्त्वों से छायावादी काव्य को जीवन्त बनाने में प्रसाद और निराला का योगदान काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। छायावादी काव्य की सीमा से ऊपर उठकर दोनों कवियों की रचनाओं को ध्वनि और संगीत जैसे चिरन्तन तत्त्वों की दृष्टि से अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में कई तत्त्वों का निराकरण और बहुत से तत्त्वों को आत्मसात् भी किया है। यद्यपि प्रसाद छायावादी ही बने रहे और निराला अपनी प्रगतिशील विचारधाराओं के कारण छायावादी ही नहीं रह सके, तो भी दोनों की रचनाएँ मात्र छायावाद तक सीमित न होकर आगे की ओर बढी। इसलिए तो इतने वर्ष बीतने पर भी, जब कभी कविता पर चर्चा होती है तब प्रसाद और निराला सबसे प्रमुख स्थापित होते हैं।

काव्य, ध्वनि और संगीत के विशेष अध्ययन से सिद्ध हो गया कि तीनों में अटूट संबन्ध है। सौंदर्य की आराधना करनेवाली ललितकलाएँ अपनी अलग विशिष्टताओं को अक्षुण्ण रखते हुए भी, अपनी चरम स्थिति में अन्य संबन्ध ललितकलाओं के तत्त्वों को आत्मसात् किए रहती है। इस दृष्टि से ललितकलाएँ विज्ञान से भी संबद्ध है। ललितकलाओं

का यह अन्तःसंबन्ध युगों से चला आ रहा है। वास्तव में इन सबका आत्यन्तिक लक्ष्य मानव मन में सौंदर्यानुभूति जगाना ही है; और यही लक्ष्य काव्य और संगीत का भी है। कलात्मक और रसात्मक होते हुए भी काव्य अलग वस्तु है तथा संगीत और वस्तु।

शब्द के माध्यम से अर्थ का साक्षात्कार काव्य का विशिष्ट लक्षण है। संगीत में शब्द अपने नादमय रूप में रहता है; उसमें नाद के सभी गुण रहते हैं, जैसे-गति, आरोह-अवरोह, वायु-तरंगों की भिन्नता से प्राप्त स्वरों की विविधता और इस विविधता में सन्तुलन, लय आदि। संगीत अपने विशुद्ध रूप में नाद है और उसमें शब्द का अर्थ अत्यन्त आवश्यक नहीं है। नाद में अर्थ को जोड़ने से उसमें 'साहित्य' पैदा हो जाता है। विशुद्ध संगीत का प्रभाव भी अलग होता है, नाद अपने तरंगमय रूप से हृदय, श्वास-प्रश्वास, स्नायु-तन्तु, रक्त एवं मन की सभी भूमियों में तरंगें और स्पन्दन पैदा करता है, जिससे जीवन में स्फूर्ति आ जाती है। अतः काव्य में शब्द के कारण जो संगीत रहता है वह पूर्णतया अर्थ के अधीन रहता है, अर्थ को उद्दीप्त करता है और काव्य की व्यंजकता को बढ़ाता है। शब्द में संगीत निहित है जो ध्वनि-कंपनों के रूप में मन की गहराई तक पहुँच सकता है। शब्द का संगीत अपने लय, सौकुमार्य और माधुर्य के साथ प्रकट होता है। इसमें गति, संगीत और गीति के तत्त्व एक साथ रहते हैं। काव्य का कोई भी ऐसा रूप नहीं है जो ध्वनि के बाहर पड़ता हो। उसकी सत्ता ध्वनि के दोनों व्यवहृत रूपों-अर्थात् भाषावैज्ञानिक तथा काव्यशास्त्रीय - में होती है।

भाषिक विकास के क्रम के वैदिक भाषा से अपभ्रंश तक प्रादेशिकता का प्राधान्य नहीं रहा, किन्तु उसके पश्चात् भाषाओं के विविध रूप क्षेत्रीय आधार पर विकसित हुए और उन भाषाओं की अपनी लयात्मकता, संगीतात्मकता एवं वर्ण-संयोजन का विकास हुआ तथा इसी क्रम में हिन्दी साहित्य का उदय हुआ। भाषा युगानुसार बदलती है। देश, काल,वातावरण, जनता की माँग आदि के अनुसार भाषा में परिवर्तन आते हैं। प्रसाद के, व्रजभाषा से

खड़ीबोली काव्यभाषा का परिवर्तन इस तथ्य को स्थापित कर देता है। निराला ने भी कहा है कि भाषा भावानुरूपिणी होनी चाहिए और यह भाव जो है युगानुसार स्वरूप बदलता है।

प्रसाद और निराला दोनों ने अपनी कविताओं में वर्ण या ध्वनि को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रसाद ने कविता को वर्णमय संगीत कहते हुए अपने काव्य में ध्वनियोजना को काफ़ी महत्त्व दिया है। उनकी आरंभकालीन रचनाएँ व्रजभाषा की ध्वनियोजना से युक्त है और बाद की खड़ीबोली की रचनाएँ भी अनुयोजित ध्वनियोजना से संपन्न है।

निराला के संपूर्ण काव्य में ध्वनि का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्वनियों पर निराला का असाधारण अधिकार है। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक वर्ण की अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् ध्वनि होती है और यही पृथकता उसका गुण है। उनके काव्य का मूलाधार ध्वनियोजना ही है।

प्रसाद और निराला दोनों की रचनाओं के व्यंजनाशक्ति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है, और इसकेलिए उदाहरण उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं। छायावादी गीतियों में शब्द के नाद, चित्र और उनकी आत्मा का अनुसन्धान उनकी विशेषता है। द्विवेदी युग में शब्द का अनुशीलन नहीं हुआ है और शब्द की अभिव्यक्ति क्षमता अभिधा तक सीमित भी थी। किन्तु छायावाद के शब्द सस्वर है, उनमें भाव और भाषा का सामंजस्य है, यही नहीं, शब्द और अर्थ को भाव की अभिव्यक्ति में भी लीन करने का प्रयत्न किया गया अर्थात् शब्द-शिल्प के आगे भाव की उपेक्षा नहीं की गई। भाषा, भाव, छन्द, व्यंजना, अलंकार, ध्वनि आदि की सहज अन्विति ही कविता और कला का सौंदर्य है। प्रसाद और निराला की रचनाओं में इन सभी तत्त्वों का समन्वय हुआ है। अर्थगांभीर्य, नादसौंदर्य, संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, आलंकारिकता, गेयात्मकता और रागात्मकता केलिए बहुत से उदाहरण इनकी रचनाओं में

निहित है। साथ ही संगीतात्मक ध्वनियों, अर्थध्वननकारी शब्दयोजना, ध्वन्यर्थव्यंजना, अनुप्रास योजना, शब्द-युग्मों के प्रयोग आदि के माध्यम से भी उन्होंने अपने काव्य में ध्वनिमाधुरी एवं अर्थगौरव को महत्ता दी है। इसप्रकार ध्वनि उनकी कविताओं में एक अविभाज्य तत्त्व है जिससे उसमें काव्यात्मकता के साथ-साथ संगीतात्मकता की भी रक्षा हुई है।

प्रसाद और निराला का संगीत उनके कवि हृदय के उद्घाटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनके काव्य में पद-पद पर गीत की मधुर धारा बहती है। दोनों की गीतियों में ही नहीं बल्कि कविताओं में भी संगीतात्मकता का तत्त्व अन्तर्लीन है। दोनों संगीतज्ञ कवि हैं साथ ही साथ अच्छे गायक भी। भारतीय संगीतशास्त्र की गहरी समझ दोनों को थी। प्रसाद मानते थे कि संगीत एक सूक्ष्म, अमूर्त तथा देशकाल एवं भाषा भेद से प्रभावित कला है। अकबर, तुलसी, तानसेन, सूर जैसे अष्टछाप के कवि आदि के समान प्रसाद ने भी व्रजभाषा में ही अपनी काव्यरचना का श्रीगणेश किया था। किन्तु प्रसाद ने जिस व्रजभाषा का प्रयोग किया था वह अपनी पूर्ववर्ती व्रजभाषा से कुछ भिन्न था। स्वरध्वनि की बहुलता के कारण व्रजभाषा विशेष श्रुतिमधुर है और आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत केलिए उपयुक्त भी। निराला ने खड़ीबोली को व्रजभाषा के समान श्रुतिमधुर रूप देने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से उनका मुख्य उद्देश्य खड़ीबोली हिन्दी की असंगीतात्मकता को दूर करना रही है। संगीत निराला का जन्मजात अलंकार है। उनकी रचनाओं में संगीत के दोनों रूपों, बाह्य एवं आन्तरिक का सफल निर्वाह हुआ है और 'गीतिका' इसकेलिए सशक्त उदाहरण है, साथ ही संगीत और काव्य क्षेत्र में एक नूतन प्रयोग भी। जितना उदात्त वहाँ काव्य है उतना ही संगीत भी।

प्रसाद और निराला संगीत प्रेमी होने के कारण संगीत की गहराइयों से भली-भाँति परिचित थे। कहीं उन्होंने संगीत के परिभाषिक शब्दों का अवलंब ग्रहण करके, कहीं आन्तरिक संगीत के समावेश से, कहीं वाद्य संगीत के सामंजस्य से अपनी रचनाओं में

मार्मिक संगीतात्मक परिवेश प्रस्तुत किया है। छन्द, ताल, लय आदि का भी निर्वाह उनकी रचनाओं में हुआ है। निराला छन्द और भाव के साथ शब्द और स्वर को भी मुक्त मानते हैं। संगीत और काव्य का संबन्ध तब तक केवल श्रुति तक सीमित था। निराला ने व्यवहार से उसे प्रमाणित भी किया है। संगीत में काव्य के अभाव का परिहार निराला ने 'गीतिका' में किया। कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से संगीत की सफलता यहाँ प्रमाणित है। निराला ने मुक्तछन्द के माध्यम से भी काव्य में संगीत लाने का प्रयास किया है जो पहले प्रसाद की रचनाओं में दीख पड़ता है। यहाँ संगीत में जिसका आधार लय है काव्य की अविच्छिन्नता की भी रक्षा हुई है। इस लय का अनुभव हम श्वास की प्रत्येक गति में, हृदय के क्षण-क्षण होनेवाले स्पन्दन में, जीवन एवं मन की प्रत्येक स्फूर्ति में करते है। लय रूप का चरम विधान है और छन्द इसी लय का मूर्त रूप है और यह लय काव्य से अविभाज्य है।

काव्य तथा संगीत के क्षेत्र में निराला ने जितने नए-नए प्रयोग किए हैं उतना आधुनिक किसी कवि ने नहीं किया। उन्होंने स्वयं अपनी कविताओं को स्वरलिपियों में बाँधने का भी स्तुत्य प्रयास किया है। उनके गीतों की जो योजना है और संगीतात्मक शब्दावली का जो चयन है वह उनके गीतों को सहज ही ग्राह्य और आस्वाद्य बना देती है।

प्रसाद के नाटकों में और निराला के उपन्यासों में उनके संगीतप्रेम और संगीत संबन्धी शास्त्रीय ज्ञान ने अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग ढूँढ निकाला है। प्रस्तुत अध्ययन काव्य रचनाओं से संबद्ध होने के कारण उक्त विषय इस शोध-प्रबन्ध की सीमा में नहीं आता है।

काव्यभाषा और संगीत का अटूट संबन्ध है। इसकेलिए सशक्त उदाहरण प्रसाद और निराला की रचनाओं में यथेष्ट मिलते हैं। दोनों ने ध्वनियोजना-नादसौंदर्य, छन्दयोजना, अर्थध्वननकारी योजना, अनुप्रास योजना आदि - से उत्पन्न संगीत को काफ़ी महत्ता दी है।

भारतीय मनीषियों ने काव्य को श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत ही स्थान दिया है। इसका यह तात्पर्य हुआ कि उन्होंने नादसौंदर्य को काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। प्रसाद और निराला का संपूर्ण काव्य ही ध्वन्यात्मक पदों से भरा है, और इनकी कुशल योजना के कारण उनकी कविताओं में संगीतात्मकता आ गई है।

ध्वनि संयोजन से अद्‌भूत संगीत का उदय होता है, जिससे काव्य में माधुर्य का अनुभव होता है। यह संगीत मात्र कानों में ही नहीं, मन में भी अनुगूँज उत्पन्न करने में सक्षम होती हैं। काव्य में संगीत अपनी संपूर्ण शक्ति व प्रभाव के साथ रह सकता है। जो, काव्य से संगीत तत्त्व को निकालकर 'शुद्ध' काव्य के पक्ष में हैं उन्हें संभवतः काव्य की व्याख्या करने में कठिनाई होगी। क्योंकि प्रत्येक शब्द अपने अर्थ के अतिरिक्त अपनी विशिष्ट ध्वनि के कारण अपने विशिष्ट माधुर्य, लय और संगीतात्मकता से संपन्न होता है। वास्तव में इन्हीं तत्त्वों के कारण ही कविता पाठकों के मन की गहराइयों में प्रवेश कर पाती है। शब्द के गंभीर प्रभाव का मूलकारण यही है कि वह अपनी सूक्ष्म ध्वनितरंगों, जिनमें संगीत की समस्त संभावनाएँ रह सकती है, और संकेतशक्ति की पैनी दृष्टि से जीवन की अदृश्य सत्ताओं तक पहुँच सकता है, जिससे जीवन प्रतिध्वनित हो उठता है। यही प्रवृत्ति युग-युगों से अर्थात् वेदों से होकर चली आ रही है। इस परंपरा का पालन प्रसाद और निराला ने किया है।

समग्ररूप में विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि प्रसाद और निराला की संगीतचेतना अत्यधिक समद्ध थी, और उनकी कविताओं में संगीत और काव्य का मणिकांचन संयोग है। प्रसाद के गीतों में संगीत का योग वैसा या उतना विशद् नहीं जितना निराला के गीतों में मिलते हैं। प्रसाद के गीत काल्पनिक और रोमांटिक अधिक है और उनके गीतों के छन्द संगीत के छन्दों की दृष्टि से नहीं रचे गये हैं। फिर भी संयोग की बात है कि निराला से बढ़कर प्रसाद के गीतों को ही अधिक प्रसिद्धि मिली। किन्तु जब

ध्वनियों और प्रतिध्वनियों ने एक समग्र काव्य वातावरण को गुंजित किया, तो निराला अपने सृजन में पुनःस्थापित हुए।

संक्षेप में, प्रसाद और निराला की कृतियों का अध्ययन काव्य, ध्वनि और संगीत की दृष्टि से करने पर हमारे सामने उक्त विषय से संबद्ध भारतीय चिन्ताधारा की एक पीठिका उपस्थित हो जाती है। प्रसाद और निराला की काव्य चर्चा में इनके संगीत को इतना महत्त्व मिलने का कारण यह है कि काव्यचेतना के सदृश इनकी संगीतचेतना में भी पर्याप्त मौलिकता है। निस्सन्देह, इनकी संगीतचेतना पुरानी मान्यताओं से कई अर्थों में पृथक् है। इनका संगीत पुराने संगीत की तरह उस सविस्तर प्रस्तुति पर ही नहीं, जिसे प्रायः लोग राग-रागिनी से संबद्ध करते हैं, बल्कि भावों के लयात्मक विन्यास में भी है। दूसरे शब्दों में इनकी संगीतचेतना में बाह्य और आन्तरिक दोनों के सम्मिलित रूप है।

हिन्दी छायावादी काव्य केलिए तथा खड़ीबोली काव्यभाषा की श्रीवृद्धि में इन दोनों कवियों की ध्वनि तथा संगीतयोजना निश्चय ही अमूल्य स्थापित होती है। प्रस्तुत अध्ययन से यह भी विदित हो गया है कि ध्वनि और संगीत तत्त्व के परिप्रेक्ष्य में समग्र छायावादी कविताओं के अध्ययन की भी गुंजाइश है।

परिशिष्ट

संगीत की पारिभाषिक शब्दावली - सूचिका

अर्धस्वरक	-	Chromatic
अनुदैर्घ्य	-	Longitudinal
अनुनाद	-	Resonance
अनुवादीस्वर	-	Subsidiary note of a musical mode.
अन्तरा	-	The intermediary part between the refrain and the final development of the Indian musical modes.
अन्तराल	-	Interval
अवरोह	-	Descent; Falling
आभोग	-	A kind of concluding note in the Indian Musical Modes.
आरोह	-	Ascent Rising
आलाप	-	Singing or playing a tune
आवर्तक	-	Harmonic
आवृत्ति	-	Frequency.
उच्चारण	-	Phonation, pronounciation
उपस्वर	-	Overtone
कण्ठस्वर	-	Voice
कंपन आन्दोलन	-	Vibration, osicillation
कंपन विस्तार	-	Amplitude of vibration
क्रम	-	Order; sequence
कोमल स्वर, विकृतस्वर	-	Flat note

गमक	-	A kind of artistic trill
गान; गीत	-	Song
गान्धार	-	Mi (Third not (ग)
गान्धर्वगान	-	Classical music
घराना	-	Musical style
घरानों की तालिका	-	Genlogical table
घुड़च, घोड़ी	-	Bridge
चिह्न	-	Sign; mark
छड़ी	-	Bow
छद्म	-	False, pseudo
झाला	-	To twist up a sharp and loud sound on string instrument.
ठेका	-	Act of accomapnying music by beating 'Tabla'.
तान	-	Musical notes
तारता, नादस्थान, स्वरक्रम, स्वरस्थान	-	Pitch
ताल	-	Percussion
ताल का महत्त्व	-	Importance of percussion system
ताल चिहन	-	Percussion symbol
तालशास्त्र	-	Theory of percussion
तालिका	-	Table
तीव्रता	-	Loudness, intenstiy
तीव्रस्वर	-	Sharp note
थाट; ठाठ, मेल; मेलकर्ता	-	Musical scale

द्विस्वरक	-	Diatonic
धैवत	-	La (sixth note (ध)
ध्वनि; नाद	-	Sound
नादसौंदर्य	-	Sound impulse
नाद विधान	-	Rhythmical creation
निषाद	-	Te (seventh note (नि)
मध्यम	-	Medium Fah (forth note (म)
मींड	-	A sweet twist of voice
मूर्च्छना	-	Gradual modulation or rise and fall in voice or notes
राग	-	Modes of Indian classical music
रिषभ (ऋषभ)	-	Rey (second note (रे)
रीति	-	Method, style, manner
लय	-	Tempo; Rhythm
लयकारी	-	Syncorportion
लयबद्ध	-	Rhythmic
वक्रस्वर	-	Oblique note
वर्जित स्वर	-	Boycotted note of a musical mode
वादी स्वर	-	Principal note of a musical mode
विवादी स्वर	-	A note opposing the principal of a musical mode (dissonant)
शुभस्वर संवाद	-	Harmonical notes
षड्ज	-	Doh (first note (स)
संगीतात्मक	-	Musical

सांगीतिक चिकित्सा	-	Music therapy
संचारी	-	The third line of the Indian musical modes
सप्तक	-	A collection of seven notes
समन्वय	-	Co-ordination
समवादी स्वर	-	A note subsidiary to the principal one
सरगम	-	Alphabet (Musical-doh, rey, me, fah etc)
स्थाई	-	Stable; standing, permanent
स्पर्शस्वर	-	Grance note
स्वर	-	note, Tone
स्वरांकन; संगीतलिपि	-	Notation
स्वरान्तर	-	Vowel antiphony
स्वरयन्त्र	-	Larynx
स्वराष्टक	-	Octave
स्वर-साधृत	-	Meantone
श्रुति	-	Microtone
श्रुतिमूलक	-	enharmonic

सहायक ग्रंथ-सूची

निराला रचनावली (भाग - १,२ & ५)	(सं)-नन्दकिशोर नवल, प्र.सं - १९८३, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-१:२)	सं-१९८८ भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली।
आलोचनात्मक एवं सामान्य ग्रंथ	आधुनिक काव्य में छन्धयोजना - डॉ. पुत्तूलाल शुक्ल, सं - १९६०, लखनऊ - विश्वविद्यालय, लखनऊ।
आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि	डॉ. कृष्णलाल शर्मा प्र.सं - १९६४, ग्रन्थम् प्रकाशन, रामभाग, कानपुर।
आधुनिक हिन्दी कवियों की काव्यकला	(सं). डॉ. प्रेमनारायण टंडन, प्र सं - १९६१, हिन्दी साहित्य भण्डार।
आधुनिक हिन्दी प्रगीत काव्य में संगीततत्त्व	डॉ. विमला गुप्ता पृ. सं - १९६९, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।कवि निराला - डॉ. नन्ददुलारे वाजपेयी पृ.सं. - १९६५, वितान-वाणी प्रकाशन वाराणासी।
कला विनोद	(सं) अशोक वाजपेयी, पृ.सं. १९८२, नॉशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
काव्यदर्पण	विद्यावाचस्पति पण्डित रामदहिन मिश्र, प्र.सं. - १९४७, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना।
काव्य-पुरुष-निराला	डॉ. जयनाथ नलिन, पृ.सं - १९७०, आलोक प्रकाशन, कुरुक्षेत्र।
काव्य और संगीत का पारस्परिक संबन्ध	डॉ. उमामिश्र, प्र.सं. १९६२ दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली।
	काव्यालोचन में सौंदर्यदृष्टि - डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, प्र.सं- १९८७, साहित्य सहकार, दिल्ली।
क्रान्तिकारी कवि निराला	डॉ. बच्चन सिंह, प्र.सं - १९५१, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, युगाश्रय, वाराणसी।

चिन्तामणि (प्रथम भाग)	आचार्य रामचन्द्रशुक्ल, प्र.सं - १९६३, इन्डियन प्रेस पब्लिकेशन, प्रयाग।
छायावाद - डॉ. नामवर सिंह, तृ.सं	१९७३, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
छायावाद की प्रासंगिकता	रमेशचन्द्र शाह, प्र.सं. - १९७३, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
छायावाद का सौंदर्य-शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. कुमार विमल, प्र.सं - १९७०, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
छायावाद की रचना प्रक्रिया	डॉ. प्रभाषप्रसाद वर्मा, प्र.सं - १९८१, अनुप्रम प्रकाशन, पटना।
छायावादी काव्य	डॉ. कृष्णचन्द वर्मा, प्र.सं. १९७२, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ-अकादमी, मध्यप्रदेश।
छायावादी काव्य का व्यावहारिक सौंदर्यशास्त्र	डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित, प्र.सं, १९९३. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
छायावादी काव्य में अर्थतत्त्व	रामदरश राय, प्र.सं - १९९९, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
जयशंकर प्रसाद	डॉ. प्रभाकर माचवे, सं-१९९६, राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली।
जयशंकर प्रसाद का कामायनी पूर्व काव्य	डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, सं-१९७७, एस.ई.एस.एण्ड कंपनी, दिल्ली।
जयशंकर प्रसाद का गीतिकाव्य	डॉ. शीतला दुबे, प्र.सं - १९९६, गीता प्रकाशन, हैदराबाद।
जयशंकर प्रसाद के काव्य में बिंब विधान	डॉ. सरोज अग्रवाल, प्र.सं - १९८७, ऋषभ चरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली।
जयशंकर प्रसाद मूल्यांकन और मूल्यांकन	(सं) डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, सं - १९९०, उच्चशिक्षा और शोध संस्थान, नई दिल्ली।
जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला	डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, प्रं.सं - १९६८ नॉशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
टैगोर और निराला	श्री. अवधप्रसाद वाजपेयी, प्र.सं - १९५५, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर।

ध्वन्यालोक	आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, प्र.सं-१९८३, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
ध्वनिसिद्धान्त	शेरसिंह बिश्ट, प्र.सं - १९९२, नॉशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
ध्वनि और संगीत	प्रो. ललित किशोर सिंह, तृ.सं - १९७१, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
नगेन्द्र ग्रंथावली - (खण्ड-२)	डॉ. नगेन्द्र, प्र.सं. १९९२ नॉशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ	गिरिजाकुमार माथुर, प्र.सं १९६६, अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।
नयी कविता की भाषा काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ में	डॉ. हरिप्रसाद पाण्डेय, प्र.सं - १९८९, बोहरा प्रकाशन, जयपुर।
नयी कविता की भाषिक संरचना	सरिता वैद्य, प्र सं - १९९३, हिमाचल पुस्तक भण्डार, नई दिल्ली।
नयी कविता में सौंदर्यचेतना	डॉ. सत्या मल्होत्रा, सं - १९९०, आर्यबुक डिपो, नई दिल्ली।
निराला	डॉ. रामविलास शर्मा, प्र.सं. १९४८ एम.वी. राव भ्रम प्रकाशन, बंबई।
निराला	(सं) - इन्द्रनाथ मदान, प्र.सं - १९७५, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
निराला	(सं) पद्मसिंह शर्मा कमलेश, प्र.सं - १९६९, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
निराला काव्य और व्यक्तित्व	डॉ. धनञ्जय वर्मा, द्वि.सं - १९६५, विद्याप्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली।
निराला का काव्य	जगदीशप्रसाद दीक्षित, प्र.सं - १९७४, पुस्तक संस्थान।
निराला की काव्य-दृष्टि	डॉ. रामकृष्ण कौशिक, प्र.सं - १९८५, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली।

निराला की सौंदर्यचेतना	अंजूशर्मा, प्र.सं - १९९०, दिनमान प्रकाशन, नई दिल्ली।
निराला काव्य का अभिव्यंजना शिल्प	जनार्दन द्विवेदी, प्र.सं - १९७२, राजेश पब्लिकेशन्स।
निराला की कविताएँ और काव्यभाषा	रेखाखरे, तृ.सं - १९८५, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
निराला की काव्यभाषा	डॉ. शिवशंकर सिंह, प्र.सं - १९७८, अनुपम प्रकाशन, पटना।
निराला और उनकी गीतिका	डॉ. रामकुमार सिंह, प्र.सं - १९८५ साहित्यालोक, देवनगर, कानपुर।
निराला की साहित्य साधना	डॉ. रामविलास शर्मा, भाग - १ - सं - १९६९ भाग - २ - सं १९७२ भाग - ३ - सं - १९७६ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
निराला और मुक्तछन्द	शिवमंगल सिद्धान्तकर, प्र.सं १९७४ दि मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड।
निराला की संगीतसाधना	डेज़ीवालिया, प्र.सं - १९८७ अंकुर प्रकाशन, नई दिल्ली।
निराला का परवर्ती काव्य	रमेशचन्द्र मेहरा प्र.सं - १९६३, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर।
निराला : आत्महन्ता आस्था	दूघनाथ सिंह, प्र.सं - १९७२, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
निराला की कविताएँ मूल्यांकन और मूल्यांकन	डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, प्र.सं - १९७७, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
निराला काव्य पुनर्मूल्यांकन	डॉ. धनञ्जय वर्मा, प्र.सं - १९७३, विद्या प्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली।
निराला के पत्र	जानकीवल्लभ शास्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
प्रकृति और काव्य	डॉ. रघुवंश, सं-१९६३ नॉशनल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
प्रसाद अभिधान	डॉ. हरिहर प्रसाद गुप्त, प्र. सं. १९८८ भाषा साहित्य संस्थान, इलाहाबाद।

प्रसाद और निराला की बिंबयोजना	मंजु गुप्ता, सं - १९९३, हिन्दी बुकसेंटर, नई दिल्ली।
प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौंदर्य-बोध	डॉ. मिथिलेशकुमारी प्र.सं - १९९०, वाणी-वाटिका प्रकाशन, पटना।
प्रसाद - निराला - अज्ञेय	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी प्र-सं - १९८९, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
प्रसाद की कविता	डॉ. भोलनाथ तिवारी, प्र.सं - १९७४, साहित्यभवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद।
प्रसाद का काव्य	डॉ. प्रेमशंकर, सं - १९६१ भारती भण्डार, इलाहाबाद।
प्रसाद काव्य : प्रतिभा और संरचना	डॉ. हरिहरप्रसाद गुप्त प्र.सं - १९८८ भाषा साहित्य संस्थान, इलाहाबाद।
प्रसाद का पर्ववर्ती काव्य	उषा मिश्र, प्र.सं - १९७० साहित्यभवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद।
प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय-अध्ययन	सुरेन्द्रनाथ सिंह, सं - १९७२ राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली।
भक्तिकालीन काव्य में राग और रस	डॉ. दिनेशचन्द्र गुप्त, सं - १९७०, भारती प्रकाशन, लखनऊ।
भारत का संगीत सिद्धान्त	कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति, द्वि.सं - १९९१, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यसिद्धान्त	डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, प्र.सं - १९७१ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
भारतीय संगीत वाद्य	डॉ. लालमणि मिश्र, प्र.सं - १९७३ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
भारतीय संगीत शिक्षा प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर	डॉ. मधुबाला सक्सेना, प्र.सं - १९९० हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ।
भाषा विवेचन	डॉ. भगीरथ मिश्र, प्र.सं - १९९०, साहित्यभवन।
भाषाविज्ञान	डॉ. भोलानाथ तिवारी, सत्रहवाँ सं-१९९८, किताबमहल, इलाहाबाद।

महाकवि प्रसाद और लहर	डॉ. गोविन्दलाल छाबड़ा, प्र.सं, १९७३, आदर्श साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
महाप्राण निराला	गंगाप्रसाद पाण्डेय, द्वि.सं-१९६८, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
युगकवि प्रसाद	डॉ. गणेशखरे, सं - १९६७, ग्रन्थम् प्रकाशन, कानपुर।
युगाराध्य निराला	गंगाधर मिश्र, प्र.सं - १९६७ श्री. राष्ट्रभाषा विद्यालय, वाराणसी।
रचना का पक्ष	नन्दकिशोर नवल, प्र.सं - २०००, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
व्यंजना और नवीनकविता	पण्डित राममूर्ति त्रिपाठी, प्र.सं - १९५७ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
शक्तिपुँज निराला	डॉ. कृष्णदेव झारी, प्र.सं - १९८६, शारदा प्रकाशन।
संगीतायन	अमलदाश शर्मा, प्र.सं - १९८४, आर्य प्रकाशन मण्डल।
संगीत की कहानी	भगवत शरण उपाध्याय, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
साहित्य का मर्म	आ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
साहित्य स्रष्टा निराला	राजकुमार सैनी, प्र.सं १९९१, अरुणोदय प्रकाशन।
सिद्धान्त और अध्ययन	बाबु गुलाबराय, पाँचवाँ सं. - १९६०, प्रतिभा प्रकाशन।
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	ये.पे. चेलिशेव, प्र.सं - १९८८ राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
सूर काव्य और संगीततत्त्व	डॉ. आशा प्रसाद प्र.सं - १९८०, कृष्णाब्रदर्स, अजमेर।
सूरकाव्य में संगीत लालित्य	डेज़ीवालिया, प्र.सं - १९८४, वाणी प्रकाशन, वाराणसी।
सौंदर्यशास्त्र	डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, तृ.सं - १९८४, मघु प्रकाशन, इलाहाबाद।
सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व	डॉ. कुमार विमल, द्वि.सं - १९८१, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
हमारा आधुनिक संगीत	डॉ. सुशीलकुमार चौबे, द्वि.सं - १९८३, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
हिन्दी के कृष्णाभक्तिकालीन साहित्य में संगीत	डॉ. उषागुप्ता, प्र.सं - १९५९ लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

हिन्दी काव्यभाषा की प्रवृत्तियाँ	डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, प्र.सं - १९९५, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
हिन्दी की मंचीय कविता	डॉ. रामनरेश, प्र.सं १९९१, विकास प्रकाशन, कानपूर।

अंग्रेज़ी ग्रंथ :-

A Historical study of Indian Music	Swami Prajananda, 1965, Anandadhar Prakashan, Culcutta.
A History of Indian Music	Swami Prajanananda 1963, Ram Krishna Vedanta Math, Culcutta.
The psychology of Music	H.P. Krishna Rao, Indological Books House, Delhi.
Music Therapy	B. Balami Gardner, 1955, Groves Dictionary of Music and Musicians.
Sadhana	Rabindranath Tagore 1961, London.

कोश ग्रंथ :-

संस्कृत-हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे, द्वि.सं - १९६९ (प्रकाशक) मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर	(मूल संपादक) रामचन्द्रवर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
हिन्दी साहित्यकोश	(प्रधान संपादक) धीरेन्द्रवर्मा, प्र.सं - १९६३, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेज़ी कोश	(सं) - महेन्द्र चतुर्वेदी और डॉ. भोलानाथ तिवारी, तृ.सं - १९९८, नॉशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

पत्रिकाएँ :-

दस्तावेज़	(सं) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अंक - ८४, जुलाई/सितंबर - १९९९
गगनाञ्चल	(सं) कन्हैयालाल नन्दन, जनवरी/मार्च - २००१
समीक्षा	(सं) गोपाल राय और हरदयाल, अप्रैल/मार्च - २००१
मधुमती	(सं) एवं अध्यक्ष - डॉ. राधेश्याम शर्मा, अंक ८ - अगस्त - १९९६
संचेतना	(सं) डॉ. महीप सिंह, पूर्णांक - १५६, जून - २००१
बहुवचन	(प्रधान-सं) अशोक वाजपेयी, अप्रैल/मई/जून - २०००